॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जनवरी २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक १

वार्षिक १६०/–　　**एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षो के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवश्यक सूचना

१८ दिसम्बर, २०१९ को आश्रम में श्रीमाँ सारदा देवी की तिथिपूजा के उपलक्ष्य में विशेष-पूजा, होम, आरती का आयोजन होगा और तदनन्तर उपस्थित भक्तों को प्रसाद वितरित किया जाएगा। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में १४ जनवरी, २०२० को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। १५ जनवरी, २०२० से २१ जनवरी, २०२० तक आश्रम प्रांगण में श्री रामकिंकर महाराज के शिष्य सन्त श्री मैथिलीशरणजी का रामचरितमानस पर प्रवचन होगा। प्रवचन के पहले और बाद में कलाकारों के द्वारा भजन-संगीत होगा। २२ जनवरी, २०२० से २५ जनवरी, २०२० तक वृन्दावन-धाम के पण्डित अखिलेश शास्त्रीजी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह भव्य मूर्ति रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के समीप विवेकानन्द कार्नर की है। इसका अनावरण १६ जुलाई २०१९ को किया गया।

जनवरी माह के जयन्ती और त्योहार

१ कल्पतरु दिवस, स्वामी सारदानन्द
२ गुरु गोबिन्द सिंह
९ स्वामी तुरीयानन्द
१२ राष्ट्रीय युवा दिवस
१७ स्वामी विवेकानन्द
२६ गणतंत्र दिवस, स्वामी ब्रह्मानन्द
२९ स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
३० सरस्वती पूजा

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **— व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री एस.पी. मित्तल, पंचकुला, हरियाणा	५१००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५८९. श्री राजकुमार तिवारी, बंजरिया, गोपालगंज (बिहार)	जिला केन्द्रीय पुस्तकालय, शिक्षा विभाग परिसर, गोपालगंज
५९०. श्रीमती स्नेहल नीरज दापके, भरतनगर, नागपुर (महा.)	साहू जैन इंटर कॉलेज, मीरगंज, जि.- गोपालगंज (बिहार)

वर्ष ५८ जनवरी २०२० अंक १

स्वामी विवेकानन्द-स्तुतिः

स्वदेशप्रीत्या यो विमलतमनीत्या प्रथितया
कयाचिद् विख्यातो जगति बहुमानं खलु भजन्।
प्रियो नः सौभाग्यादजनि धरणौ भारतनृणां
विवेकानन्दोऽसौ जयति यतिवृत्तान्तविबुधः।।

– जो स्वदेशप्रेम रूपी अति विमल नीति के द्वारा संसार में प्रसिद्ध और गणमान्य हुए थे, जो भारतवासियों और तत्त्वज्ञानी संन्यासियों में श्रेष्ठ रूप से प्रतिपन्न हुए थे और जो प्रिय विवेकानन्द हमलोगों के परम सौभाग्यवश ही इस जगत में नर रूप में जन्म-ग्रहण किए थे, उन्हीं विवेकानन्द की जय हो ।

विदित्वा वेदान्तं विविधविधशान्तं सुमनसां
तपः स्मारं स्मारं मुनिनियमसारं परिचरन्।
चरन् देशे देशे निरदिशदहो तत्त्वमतुलं
विवेकानन्दोऽसौ जयति यतिवृत्तान्तविबुधः।।

– विभिन्न विधि-विधान के उपशमस्वरूप वेदान्त शास्त्र को जानकर ज्ञानी तपस्वियों के विविध व्रत, नियम और तपस्या-स्मरण से मुनियों के नियमानुसार आचरण एवं विभिन्न देशों में भ्रमण कर जिन्होंने अनुपम वेदान्त तत्त्व का प्रचार किया, उन्हीं ज्ञानी, यति वृन्दों में श्रेष्ठ स्वामी विवेकानन्द की जय हो ।

पुरखों की थाती

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।६६६।।

– जो माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ने-लिखने में उत्साहित नहीं करते, वे मानो उनके शत्रुओं के समान हैं, क्योंकि (बड़ा होकर) वह विद्वानों की सभा में हंसों के बीच बगुले की भाँति अपमानित होता रहता है।

अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजा सिंहोऽपि नागाननम्।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालोऽनलो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम्
।।६६७।।

– (शंकरजी के परिवार की दशा ऐसी है कि) उनके गले का भूखा साँप गणेशजी के (वाहन) चूहे को खाना चाहता है, उस सर्प पर भी कार्तिकेय का (वाहन) मोर घात लगाये हुए है, पार्वतीजी का वाहन सिंह गणेशजी के हाथीवाले सिर पर दृष्टि गड़ाये हुए है। दूसरी ओर पार्वतीजी शिव के मस्तक पर चढ़ी हुई गंगाजी के प्रति ईर्ष्या से जली जा रही हैं, कलानाथ चन्द्रमा के प्रति उनके मस्तक की अग्नि ईर्ष्यालु है। अपने कुटुम्ब में चल रहे इस कलह से परेशान होकर भगवान शिव ने यदि विषपान कर लिया, तो इसमें भला आश्चर्य की क्या बात!

विश्व में सर्वश्रेष्ठता प्राप्ति हेतु आत्मविश्वास और देशप्रेम परम आवश्यक

भारत अपनी सैकड़ों वर्षों की परतन्त्रता की बेड़ियों को ७२ वर्षों पूर्व काट चुका था। लेकिन स्वर्ण पक्षी – 'सोने की चिड़िया' और सर्वसमृद्ध भारत की गरिमा और आत्मसम्मान से विश्व में विकासशील देशों में वंचित था। आज भारत सम्पूर्ण जगत में अपने आत्मसम्मान और गौरव हेतु प्रसिद्ध हो रहा है। अन्य विकसित राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्ष भारत से हाथ-मिलाने में गौरव का बोध करते हैं। भारत की विश्वहिताय विभिन्न योजनाओं के साथ काम करने की हार्दिक इच्छा रखते हैं एवं अपनी गरिमा का बोध करते हैं। प्राचीन सर्वसमर्थ, समृद्ध गौरवशाली भारत का पतन तत्कालीन कुछ राजाओं की स्वार्थपरायणता, परस्पर राग-द्वेष, लोभ, एक-दूसरे पर विजय का उन्माद, सामान्य जनता की उपेक्षा, प्रजा पर अत्याचार, धर्मभेद, जातिभेद, अस्पृश्यता आदि के कारण हुआ, जिसका भयंकर दुष्परिणाम सैकड़ों वर्षों की परतन्त्रता के रूप में भुगतना पड़ा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी इसमें पर्याप्त विकासोन्मुख गति नहीं थी। विश्व में उसे वह सम्मान नहीं मिल रहा था, जो उसे प्राचीन भारत में प्राप्त था। सम्पूर्ण विश्व में विश्वबन्धुत्व की शिक्षा देनेवाला भारत स्वयं ही परस्पर विवाद से ग्रस्त और विभाजित था। लेकिन आज भारत पुन: अपनी सैकड़ों वर्षों की तन्द्रा को तोड़कर विश्व में विभिन्न क्षेत्रों में अपना कीर्तिमान स्थापित कर रहा है।

भारत के वैश्विक चतुर्मुखी विकास को तीव्र गति प्रदान करने एवं अपनी स्नेहसरिता में सम्पूर्ण जगत को समाविष्ट करने के लिए उसे और दो कार्य करने होंगे, जो किसी भी राष्ट्र के विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक हैं, जिसकी अवधारणा स्वामी विवेकानन्द ने १२० वर्ष पहले ही स्पष्ट कर दी थी।

एक बार स्वामी विवेकानन्द जी से किसी ने पूछा – जापान अकस्मात ही कैसे इतना उन्नत हो गया? इसका क्या रहस्य है? स्वामीजी ने उत्तर दिया – जापानियों का आत्मविश्वास और स्वदेश प्रेम। जब भारत में ऐसे व्यक्तियों का जन्म होगा, जो जन्मभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर रहेंगे, जिनके मन और मुँह एक होंगे अर्थात् जो निष्कपट और लगन के पक्के होंगे, तब भारत पुन: सब क्षेत्रों में श्रेष्ठ पदवी प्राप्त करेगा। मनुष्य ही देश का निर्माण करते हैं। केवल भूखण्ड में क्या रखा है! सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों में जब तुम जापानियों के समान सच्चे होगे, तब तुम भी जापानियों की तरह बड़े हो जाओगे। जापानी लोग अपने देश के लिए सब कुछ निछावर करने को तत्पर रहते हैं। इसीलिए वे बड़े बन गए हैं और तुम लोग तो कामिनी-कांचन के लिए सर्वस्व त्यागने को प्रस्तुत हो!

स्वामीजी के उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट इंगित होता है कि स्वामीजी ने भारत की दुर्बलताओं को बहुत पहले ही समझ लिया था और उससे बचने के लिए मार्गदर्शन भी किया था। किसी भी कार्य को करने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति में आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति को यह पूर्ण विश्वास हो कि वह इसे अवश्य सम्पूर्ण कर लेगा, तभी वह उसमें पूर्ण सफल होता है। पूर्ण विश्वास के मूल में दृढ़ संकल्प होता है। चाणक्य ने संकल्प लिया कि जब तक नन्दवंश का नाश कर पुन: नवराज्य की स्थापना न कर लूँगा, तबतक शिखा नहीं बाँधूगा और उन्होंने मौर्यवंश की स्थापना की। राक्षसों द्वारा खाए हुए मुनियों के हड्डियों के ढेर को देखकर श्रीराम ने हाथ उठाकर यह प्रण किया कि 'निसिचर हीन करऊँ महि भुज उठाई पन कीन्ह' और अन्त में वे रावणादि राक्षसों का वध कर सुशासन की स्थापना करते हैं। कृष्ण ने कंस, अघासुर, बकासुर आदि का वध किया। अधर्मी कौरववंश के विनाश का संकल्प

लिया और उसकी दुर्योधन के समक्ष घोषणा भी की। यहाँ तक कि उन्होंने अधर्मी अपने वंश का नाश भी करा दिया। स्वतन्त्रता सेनानियों, राष्ट्र-बलिदानियों ने राष्ट्र स्वतन्त्रता का दृढ़ संकल्प लिया। पं. मदन मोहन मालवीय जी ने काशी हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना का आत्मविश्वासपूर्वक दृढ़ संकल्प लिया। विकलांग अरूणिमा सिन्हा ने एवरेस्ट विजय का संकल्प लिया और वे सफल हुईं। उपरोक्त सभी लोगों ने पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ पुरुषार्थ किया, इसमें आगत विघ्न-बाधाओं से प्राण-पण से संघर्ष किया और तब जाकर अपने उद्देश्य में सफल हुए। इसलिए भारत के प्रबुद्ध नागरिक, सामान्य जनता और विशेषकर युवा भारत को विश्व में सर्वोच्च स्थान दिलाने हेतु अपने में आत्मविश्वास जाग्रत करें और नये विश्व की संरचना में भारत की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए उस दिशा में सार्थक अध्यवसाय करें।

किन्तु हमारी सफलता का सम्पूर्ण अध्यवसाय, पुरुषार्थ धन-मान-यश की प्राप्ति, स्वार्थ पर केन्द्रित न हो। इसलिए स्वामीजी आत्मविश्वास के साथ देशप्रेम की बात करते हैं। हमारा सम्पूर्ण प्रयत्न स्वकेन्द्रित न होकर राष्ट्र के निर्माण के लिये हो। राष्ट्रवासियों के हित में हो। राष्ट्र का कल्याण प्रत्येक देशवासियों के कल्याण में हैं। हम प्रत्येक देशवासी का उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास कर एवं उसे लोककल्याण में संलग्न करने के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करें।

भारत का पतन जिन कारणों से हुआ, उन कारणों को दूर करने से पुन: उत्थान हो जाएगा। स्वामीजी भारत के पतन के सम्बन्ध में कहते हैं – ''मेरा मानना है कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप आम जनता की उपेक्षा है और वह भी हमारे पतन का एक कारण है। हम चाहे जितनी राजनीति करें, उससे तब तक कोई लाभ नहीं होगा, जब तक कि भारत की जनता एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित तथा सुपालित नहीं होती। वे हमारी शिक्षा के लिये (राजकर के द्वारा) धन देते हैं, (शारीरिक श्रम के द्वारा) हमारे मन्दिर बनाते हैं और बदले में ठोकर पाते हैं। वे व्यवहारत: हमारे दास हैं। यदि हम भारत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं, तो हमें उनके लिये काम करना होगा।''[१]

स्वामीजी कहते हैं – ''समाज का नेतृत्व चाहे विद्या-बल से प्राप्त हुआ हो, बाहु-बल से अथवा धन बल से, परन्तु उस शक्ति का आधार प्रजा ही है। इस शक्ति के आधार - प्रजा से शासक वर्ग जितना ही अलग रहेगा, वह उतना ही दुर्बल होगा।''[२] स्वामीजी आगे कहते हैं – ''व्यष्टि के स्वार्थों की रक्षा हेतु लोगों का ध्यान समष्टि के हित की ओर जाता है। स्वदेश के स्वार्थ में अपना स्वार्थ और स्वदेश के हित में अपना हित है।''[३]

स्वामीजी कर्तव्य-बोध कराते हुए कहते हैं – ''समष्टि (समाज) के जीवन में व्यष्टि (व्यक्ति) का जीवन है, समष्टि के सुख में व्यष्टि का सुख है, समष्टि के बिना व्यष्टि का अस्तित्व ही असम्भव है, यही अनन्त सत्य जगत का मूल आधार है। अनन्त समष्टि के साथ सहानुभूति रखते हुए उसके सुख में सुख और उसके दुख में दुख मानकर धीरे-धीरे आगे बढ़ना ही व्यष्टि का एकमात्र कर्तव्य है।''[४]

भारत के जन-साधारण की अपार शक्ति का बोध कराते हुए स्वामीजी कहते हैं – ''हे भारत के श्रमजीवियो, तुम्हारे नीरव, सदा ही निन्दित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, सिकन्दरिया, यूनान, रोम, वेनिस, जिनेवा, बगदाद, समरकन्द, पुर्तगाल, स्पेन, फ्राँसीसी, दिनेमार, डच और अँग्रेजों का क्रमश: आधिपत्य हुआ और उनको ऐश्वर्य मिला। और तुम? कौन सोचता है इस बात को! तुम्हारे पुरखे दो दर्शन लिख गए हैं, दस काव्य तैयार कर गए हैं, दस मन्दिर खड़े कर गए हैं और तुम्हारी बुलन्द आवाज से आकाश फट रहा है, और जिनके रुधिर-स्राव से मनुष्य जाति की यह सारी उन्नति हुई है, उनके गुणों का बखान भला कौन करता है? ...हमारे गरीब, घर में तथा बाहर दिन-रात मौन रहकर कर्म किए जा रहे हैं, उसमें क्या वीरता नहीं है? ...अत्यन्त छोटे से कार्य में भी, सबके अज्ञात भाव से जो निःस्वार्थता एवं कर्तव्यपरायणता दिखाते हैं, वे ही धन्य हैं – वे तुम लोग हो – भारत के हमेशा के पैरों तले कुचले श्रमजीवियों! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।[५]

इस प्रकार स्वामीजी हमें भारत के नवोत्थान का मार्ग बताते हैं। हम समस्त देशवासियों, विशेषकर युवाओं से यह आग्रह करते हैं कि वे स्वामीजी के दो मूल मन्त्र आत्मविश्वास और देशप्रेम को जीवन में अपनाकर भारत को विश्व के सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान करने में अपने जीवन को धन्य करें।

सन्दर्भ सूत्र – १. मेरा भारत अमर भारत, पृष्ठ-२५, **२.**, **३.** और **४.** वही, पृ. २४, **५.** विवेकानन्द साहित्य, खंड ८, पृ. १९०

स्वामी विवेकानन्द का वैश्विक मन

प्रव्राजिका विरजाप्राणा

नॉर्थ कैलिफोर्निया के रेडवूड्स में कुछ लोग स्वामी विवेकानन्द जी के साथ शिविर कर रहे थे। १९०० ई. के मई महीने की शाम थी। स्वामी विवेकानन्द ने शिविरार्थियों से कहा, ''आप लोग स्वेच्छानुसार किसी पर ध्यान कर सकते हैं। पर मैं सिंह के हृदय पर ध्यान करूँगा। इस ध्यान से बल मिलता है।'' आइए, हम भी सिंह के हृदय में निवास कर देखें। किन्तु यह सामान्य सिंह नहीं है, यह है 'नर-सिंह'! ईश्वरलीन हृदय में प्रवेश कर हमें अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है कि कैसे ईश्वरलीन मुक्त आत्मा सीमाबद्ध मनुष्य जीवन धारण करती है और अन्य मनुष्यों की तरह अनुभव करते हुए भौतिक जगत में विचरण करती है? यह दैवी रहस्य बुद्धि के परे है। किन्तु वैश्विक हृदय के द्वार से प्रवेश करने पर इसका ज्ञान हो सकता है।

सप्तर्षियों के अलौकिक मंडल में विराजित स्वामीजी का हृदयकमल पूर्ण उत्फुल्ल था। किन्तु परम प्रकाश के पुत्र, उनके गुरु श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी के गले में (बालक की तरह) हाथ डालकर ध्यानमग्न अन्य ऋषियों से उन्हें पृथक् किया। उनसे भौतिक जगत में अवतरित होने की प्रार्थना की। स्वामीजी का अपने सत्यस्वरूप का ज्ञान कुछ अस्पष्ट हो गया। महामाया ने स्वामीजी का वास्तविक स्वरूप माया के परदे से ढक दिया, ताकि उनका कार्य स्वामीजी के माध्यम से हो सके। इस प्रकार माँ जगदम्बा ने स्वामीजी को सारे मानवों के लिए सुगमता से उपलब्ध कराया। श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र (स्वामीजी का संन्यासपूर्व नाम) के विषय में अनेक प्रसंगों में कहा था, ''जब उसकी स्व-स्वरूप की स्मृति जाग्रत हो जाएगी, तब वह उसी अलौकिक राज्य में पुन: चला जायेगा, जहाँ से वह आया था।''

श्रीरामकृष्ण को स्वामीजी की आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य को संयमित कर प्रवाहित करने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। क्योंकि स्वामीजी की आध्यात्मिक शक्ति का प्रवाह निरन्तर एकमेवाद्वितीय ब्रह्म के असीम समुद्र की ओर आकर्षित होता था। स्वामीजी के जीवनकाल में यह सुप्त प्रवाह ऊपरी सतह पर प्रकट हो, उन्हें पुन: उस अलौकिक राज्य में ले जाने की कोशिश करता था। जगत के कल्याण हेतु इस आध्यात्मिक नदी के प्रवाह को प्राकृतिक स्रोत से दूसरी दिशा में मोड़ना पड़ता था। अन्यथा वह निराकार के जल में लुप्त हो जाता। भगवान के अवतार ही यह कार्य पूरा कर सकते थे और उन्होंने वह कर दिखाया। किन्तु,

इस समय सभी की सेवा के लिए धीरे-धीरे स्वामीजी के हृदयकमल का विस्तार हुआ।

स्वामीजी के रूप में प्राचीन ऋषि नर-रूप धारण कर आये थे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने दिव्य कार्य में मदद करने के लिए धरती पर लाया था। वह अलौकिक कार्य था – भारत तथा विश्व का आध्यात्मिक पुनरुत्थान! स्वामीजी मूर्तरूप में विश्वमानव थे। उनमें मनुष्य के उदात्त, उत्कृष्ट, उन्नत, दिव्य गुणों का दुर्लभ समन्वय था। श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी के द्वारा आध्यात्मिक सत्ता के महाप्रवाह को प्रवाहित किया था। यही महाशक्ति उनके मानवता के प्रति असीम प्रेम के रूप में प्रकट हुई। उसी की प्रेरणा से उन्होंने भारतवर्ष में तथा पाश्चात्य देशों में भ्रमण किया। इस भ्रमण का उद्देश्य था – 'मनुष्य को उसके आन्तरिक दिव्यत्व की अनुभूति में सहायता करना।'' उन्होंने स्वयं कहा, ''... मैं मनुष्य के प्रेम में फँस गया हूँ।''

श्रीरामकृष्ण की अवतार लीला समाप्त हो रही थी। १८८६ का समय था। नरेन्द्र ने ठाकुर से ईश्वररूपी मनुष्य की सेवा का तत्त्व जाना था। किन्तु यह कल्पना क्रियाशील नहीं हुई थी। काशीपुर के उद्यान-भवन में एक दिन महासमाधि के पूर्व श्रीठाकुर ने लिखा, 'नरेन्द्र लोगों को शिक्षा देगा।' नरेन्द्र ने इस पर आपत्ति जतायी। तब श्रीरामकृष्ण ने कहा, ''तुम्हारी हड्डियाँ तक कार्य करेंगी।''

आदिशक्ति की योजना में नरेन्द्र को उसकी भूमिका के लिए मनाना सरल नहीं था। श्रीरामकृष्ण ने बहुत कठिनाई से नरेन्द्र का हृदय-परिवर्तन किया। जो बीज उन्होंने नरेन्द्र के मन में बोए थे, वह फल–फूलकर वटवृक्ष बने। ऐसा वटवृक्ष जो सभी नर-नारियों को आश्रय दे सके। नि:संशय नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के काल तक अपनी जिम्मेदारी समझने में सक्षम हो गये थे। ठाकुर के कठोर प्रशिक्षण और कृपा से तथा स्वयं की कठिन आध्यात्मिक तपस्या से नरेन्द्र आध्यात्मिक जगत के उच्चतम अवस्था तक पहुँच गये थे। तब उन्हें एक बार निर्विकल्प समाधि का अनुभव हुआ था। किन्तु अन्तर्निहित आध्यात्मिक प्रवाह ऊपरी सतह पर जोर देकर उछल रहा था। उन्हें व्यक्तिगत स्तर पर परमतत्त्व की अनुभूति प्राप्त करने के लिए बार–बार आकर्षित कर रहा था। उन्होंने गुरु के निर्देशानुसार अभी तक अपने हृदय को दूसरों के साथ जोड़ा नहीं था।

नरेन्द्र इस कार्य के लिए अनिच्छुक थे। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने उनका चयन किया था। वे श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी थे। इस सम्पत्ति को सभी को बाँटने का कार्य उनके भाग्य में लिखा था। महासमाधि के तीन-चार दिन पूर्व ठाकुर ने नरेन्द्र में अपनी आध्यात्मिक शक्ति संचारित कर दी। उन्होंने गम्भीर भाव से कहा, ''नरेन, मेरे पास जो था, वह सब आज मैंने तुम्हें दे दिया। अब मैं फकीर बन गया हूँ, एक अकिंचन भिखारी हो गया हूँ! जो शक्तियाँ मैंने तुम्हें प्रदान की हैं, उससे तुम जहाँ से आये थे वहाँ वापस जाने तक संसार में बहुत बड़े काम करोगे।''

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात् युवा संन्यासी नरेन्द्र के पास एकत्रित हुए। वे लोग वराहनगर में रहने लगे। यहीं रामकृष्ण संघ के भ्रातृत्व का प्रथम आकार मिला। गुरु के महासमाधि के उपरान्त हृदय में उठी विरह वेदना कठोर आध्यात्मिक तपश्चर्या के आनन्द से धीरे–धीरे शीतल हो रही थी। नरेन्द्र स्नेहशील बड़े भाई के समान ध्यानपूर्वक सबको प्रशिक्षित कर रहे थे। गुरु-भाइयों की नरेन्द्र के प्रति दृढ़ निष्ठा थी। एकान्त, अनासक्त, ईश्वर-आश्रित जीवन जीने की इच्छा, भारतीय संन्यासियों की परम्परा रही है। शीघ्र ही इस इच्छा ने गुरु-भाइयों के मन पर अधिकार कर लिया। एक-के-बाद एक मठ का त्याग करने लगे। वे ईश्वर-आश्रित जीवन जीने की इच्छा से विभिन्न समय तपस्या के लिए मठ से निकल पड़े।

नरेन्द्र को भी इस अलौकिक इच्छा ने व्याकुल किया। सामान्यत: साधु योजना बनाकर पवित्र तीर्थस्थानों की यात्रा करते हैं। किन्तु नरेन्द्र, परमतत्त्व में तल्लीन होने के लिए तत्पर थे। आन्तरिक व्याकुलता के कारण अपने आप को संतुष्ट नहीं कर पा रहे थे। यह व्याकुलता उन्हें यात्रा के लिए प्रवृत्त कर रही थी। अत: उन्होंने जुलाई, १८९० से जनवरी, १८९१ के बीच में कई बार मठ का त्याग किया। परिव्राजक संन्यासी की तरह भ्रमण करने का उनका उद्देश्य था। वे कभी अकेले अथवा कभी–कभी एक-दो संन्यासी-भाइयों के साथ भ्रमण करते थे। अपने बीमार संन्यासी गुरु-भाई की चिन्ता अथवा मठ की कोई समस्या उन्हें वापस खींचकर मठ में लाती थी।

नरेन्द्र का हृदय थोड़ी-सी उद्दीपना के कारण आत्मतत्त्व में लीन हो जाता था। यह जानकर ठाकुर ने जान-बूझकर उन्हें अपने संन्यासी शिष्यों के प्रेम और हित के बंधन में बाँधा था। स्वामी अखण्डानन्द, जिन्होंने स्वामीजी के साथ दूरस्थ

यात्राएँ की थीं, कुछ वर्षों बाद कहते हैं, "ऐसा लगता है कि स्वामीजी की शान्त और शुद्ध संन्यासी जीवन में वापस आने की इच्छा थी, किन्तु वे परिस्थिति के कारण विवश थे। उन्हें एक ध्येय प्राप्त करना था। उनकी मानसिक प्रवृत्ति पूर्णत: उन्हें उनके ध्येय की ओर खींचती थी।"

वाराणसी के प्रख्यात संस्कृत विद्वान प्रमदादास मित्र को एक पत्र में नरेन्द्र ने लिखा, "शायद आप नहीं जानते कि मैं कठोर वेदान्ती विचारों का होता हुआ भी बहुत ही कोमल-हृदय हूँ, और इसी से मेरा सर्वनाश होता है। थोड़ा भी आघात मुझे विचलित कर देता है, क्योंकि मैं कितना ही स्वार्थपरायण रहने का प्रयत्न करूँ, दूसरे की लाभ–हानि देखते ही मेरा सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है।"

भ्रमणकाल की अनेकों घटनाओं ने उनके हृदय पर गहरे आघात किये। जिससे वे 'नर-नारायण' – 'प्रत्यक्ष भगवान' की ओर आकर्षित हुए। वाराणसी में रहते समय नरेन्द्र को अत्यधिक व्यक्तिगत क्षति हुई। उनके दो आत्मीय गुरु-भाइयों, बलराम बसु और सुरेन्द्रनाथ मित्र, जो मठ के हितैषी और ठाकुर के बड़े भक्त थे, उनका निधन हो गया। दक्षिणेश्वर में अपने आत्मीय मित्रों के साथ बिताये दिनों की स्मृतियाँ उनके मन में उभर आयीं। उनका मन दुखित हो गया। प्रमदादास मित्र नरेन्द्र की भावनाओं को देखकर विस्मित हो गये। क्योंकि उनकी दृष्टि से संन्यासी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु नरेन्द्र ने कहा, "आप ऐसी बात न करें। हम शुष्क संन्यासी नहीं हैं। आप क्या सोचते हैं कि संन्यासी को हृदय नहीं होता?" नरेन्द्र स्वामी अखण्डानन्द के साथ भ्रमण करते हुए अलमोड़ा पहुँचे। वहाँ उन्हें अपनी प्यारी बहन की अकस्मात् मृत्यु का समाचार मिला। सामाजिक कठोर बन्धनों ने उसे आत्महत्या करने के लिए विवश किया था। नरेन्द्र इस भीषण दुखद घटना से विस्मित हो गये। भारतीय स्त्रियों की अनन्त काल से चली आ रही समस्याएँ और दुख उनके हृदय में प्रवेश कर गए। उनका दुख अत्यन्त गहरा था। दुख का यह आघात आजीवन उनके मन पर रहा। उन्होंने तत्क्षण निश्चय किया था कि भारतीय कन्याओं को कठोर सामाजिक बंधनों से मुक्त करने के लिए, उनके उत्थान के लिए वे अवश्य मदद करेंगे।

कुछ दिनों बाद स्वामीजी अलमोड़ा से हिमालय के चरण-स्थल ऋषिकेश गये। यहाँ नरेन्द्र इतने बीमार हुए कि ऐसा लगा कि उनकी मृत्यु हो जाएगी। चमत्कारी ढंग से किसी परिव्राजक संन्यासी की साधी जड़ी–बूटी से उनका जीवन बचा। इस नाट्यपूर्ण घटना का विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है। किन्तु स्वामीजी ने बाद में बताया कि, बाह्यत: अचेत अवस्था में उन्हें यह संकेत मिला, '... उनका एक ध्येय (कार्य) है, जिसे उन्हें इस जगत में पूर्ण करना है।' इस घटना के बाद उन्होंने सोने की शृंखला रूपी सारे बंधनों को तोड़ने का निश्चय किया। वे जनवरी, १८९१ से अकेले ही भ्रमण करने लगे। उन्होंने १८९१ से १८९३ तक पूरे भारत की यात्रा की। यात्रा में अधिकतर वे अकेले ही भ्रमण करते थे। पैरों में जूते पहने बिना, अन्न और निद्रा के लिए स्थान के अभाव में ही उन्होंने अधिकांश यात्राएँ कीं।

यह उनके निर्णयात्मक दैवी भाग्य का प्रारम्भ था। इस कालावधि का विस्तृत विवरण ज्ञात न होने के कारण उस समय कौन–कौन सी घटनाएँ घटीं, यह बताना कठिन है। हम जैसे लोग जिनकी चेतना का स्तर स्वामीजी जैसे गूढ़ व्यक्ति के स्तर पर नहीं है, उनके लिए स्वामीजी का जीवन एक बंद पुस्तक जैसा है। किन्तु इस यात्रा के समय उनका मन और मस्तिष्क (हृदय) कैसा कार्य कर रहा था, इसका कुछ विवरण उनके पत्र, संवाद तथा स्मृतियों में मिलता है। स्वामीजी जिन लोगों से मिले थे तथा उनके गुरुभाई और मित्रों से भी कुछ जानकारी उपलब्ध हुई है।

परिव्राजक संन्यासी के रूप में एकाकी भ्रमण करते समय उनमें एक परिवर्तन हुआ, वह था – उनके हृदय का विस्तार! अथवा हम कह सकते हैं कि ऋषिकेश में मिली भावी कार्य की पूर्वसूचना का दृढ़ीकरण था। उनकी भ्रमणगाथा अनेकों आध्यात्मिक अनुभवों से सम्पन्न थी। दूसरों के साथ बाँटे हुए सुख-दुख के अनुभवों के कारण उनके हृदय का विस्तार हुआ। यात्रा के अनुभवों ने उन्हें तीन प्रकार से भारत की आत्मा के समीप और अन्त में जगत के निकट लाया। पहले तो उन्होंने अपनी मातृभूमि के प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा और उसके पुनरुत्थान की आवश्यकता को समझा। दूसरा, वे समाज के विभिन्न स्तरों के लोगों के निकट सम्पर्क में आये। इन्हीं सामान्य मनुष्यों की समस्याओं और दुखों की गहरी छाप उनके हृदय पर पड़ी। तीसरा, उनकी त्याग की प्रेरणा तीव्र हुई और श्रीरामकृष्ण की इच्छा पर निर्भरता बढ़ गयी।

स्वामीजी ने भारतभ्रमण में देश की शोचनीय अवस्था देखी। भारत की वैविध्यपूर्ण प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति को विदेशी शासन ने रौंद डाला था। सामाजिक रुढ़ियों

तथा पाश्चात्य भौतिकवाद के कारण संस्कृति का नाश हुआ था। एक समय यह उच्च मूल्यों पर आधारित विकासशील समाज था। इसकी आध्यात्मिक परम्पराएँ कालातीत थीं। क्योंकि ये परम्पराएँ उपनिषत्कालीन ऋषियों के अनुभवों पर आधारित थीं। ऐसा समाज धीरे–धीरे विघटित हो रहा था। इस दुखद परिस्थिति को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखकर स्वामीजी सहन नहीं कर पाये। अपने ही लोगों द्वारा उपेक्षित और बदनाम मातृभूमि को देखकर उन्हें गहरी वेदना हुई। स्वामीजी की ऐतिहासिक दृष्टिकोण और प्राचीन तथा आधुनिक विचारधाराओं के विषय में अद्वितीय अन्तर्दृष्टि थी। इस अन्तर्दृष्टि से वे सभ्यता के उत्थान, विकास, पतन और समस्याओं को ठीक से समझ सके। भारत भौतिक, सांस्कृतिक और ऊपरी तौर से आध्यात्मिक समस्याओं के भार के नीचे कहाँ दब रहा है, इसमें उन्हें संदेह नहीं था।

भारत की आन्तरिक गरिमा और आध्यात्मिकता अटूट थी। केवल दिशा खो गयी थी। वे जानते थे कि भारत को जीवित रहना है, तो उच्छृंखल सांस्कृतिक और सामाजिक अपकर्ष को पुनरुत्थान के द्वारा खड़ा करना होगा। उसके भवन की नींव मजबूत थी। किन्तु प्रासाद डगमगा रहा था। स्वामीजी को द्विपद्धतीय पुनरुत्थान अपेक्षित था। एक ओर था भारत के सनातन धर्म का पुनरुज्जीवन और दूसरी ओर आध्यात्मिकता के आधार पर भारतीय समाज का अलौकिक, वैविध्यपूर्ण, संस्कृति के साथ पुनर्गठन था। इसमें आधुनिक युगानुसार वैज्ञानिक और वास्तविक दृष्टि रखना था। स्वामीजी पाश्चात्य इतिहास और विज्ञान के अध्येता थे। उन्हें सार्वजनिक जनसाधारण की शिक्षा, औद्योगीकरण, सामाजिक व्यवस्था के उन्नयन की नितान्त आवश्यकता का अनुभव हुआ। तथापि भारत में पाश्चात्यों के अन्धानुकरण से आनेवाले भौतिकवाद की भी आशंका थी। शिक्षित वर्ग के कुछ हिन्दू पहले से ही इसके शिकार हो चुके थे।

भारत का पुनरुत्थान धर्म को छोड़कर केवल सामाजिक सुधारों से (मूल और शाखाओं) नहीं हो सकता। स्वामीजी ने भारत की समस्याओं के साथ स्वयं जूझकर उनके उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश की। उन्होंने कितनी रातें भारत के प्राचीन गौरव और अनिश्चित भविष्य का चिंतन करते हुए अनिद्रा में व्यतीत किया। उन्हें भारतभूमि को किसी भी प्रकार से भयंकर निद्रा से जगाना था। स्वामीजी के मतानुसार भारत का सामाजिक पट सामान्य जनों की हृदयविदारक परिस्थिति के प्रति वर्षों की उपेक्षा के कारण छिन्न हुआ था। वे सहस्त्रों जनों के दुख, दारिद्र्य, अशिक्षा और अध:पतन से अत्यन्त व्यथित हुए। भारत के सामान्य जनों का क्रन्दन, मनुष्य में अन्तर्निहित भगवान प्रकट होने के लिए संघर्ष कर रहे, सब ओर सहायता पाने के लिए व्याकुल हो रहे हाथों ने उनकी अन्तरात्मा को व्यथित कर दिया। पिता की अकस्मात् मृत्यु के पश्चात् उन्हें कई कटु अनुभव हुए। इसलिए उन्हें पता था कि कठिन समय आने पर कोई मदद नहीं करता। वे जाति-जाति की विषमता और उच्च वर्ग के लोगों का उनके निर्धन बन्धुओं के प्रति उपेक्षाभाव देखकर तड़पते थे। सनातनी पंडितों का पूर्वाग्रह, दुराग्रह और अहंकार तथा पुरोहितों की तुच्छ संकुचित मनोवृत्ति उनके मन में क्रोध उत्पन्न करती थी। आलासिंगा पेरुमाल को लिखे पत्र में उन्होंने जन-साधारण के प्रति हृदयहीन व्यवहार की घोर निन्दा की है। वे लिखते हैं – ''भारतवर्ष में हम लोग गरीबों को, साधारण लोगों को, पतितों को क्या समझते हैं! उनके लिए न कोई उपाय है, न बचने की राह और न उन्नति के लिए कोई मार्ग ही। भारत के दरिद्रों का, भारत के पतितों का, भारत के पापियों का कोई साथी नहीं, उन्हें कोई सहायता देने वाला नहीं, वे कितनी ही कोशिश क्यों न करें, उनकी उन्नति का कोई उपाय नहीं है। वे दिन-पर-दिन डूबते जा रहे हैं। राक्षस जैसा नृशंस समाज उन पर लगातार चोटें कर रहा है, उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे हैं, पर वे जानते नहीं कि वे चोटें कहाँ से आ रही हैं।'' उदारहृदय स्वामीजी ने दिन-प्रतिदिन अपने देशवासियों की समस्याओं को अधिकाधिक समझा। कुछ वर्षों बाद एक दिन गिरीशचन्द्र घोष भारतीय समाज की अवनति, दुर्दशा का सजीव वर्णन कर रहे थे। स्वामीजी तब उनके शिष्य शरच्चन्द्र चक्रवर्ती से वार्तालाप कर रहे थे। अपने देशवासियों की दयनीय अवस्था के विषय में सुनकर स्वामीजी एकदम शान्त और विचारमग्न हो गये। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। त्वरित वे उस कमरे से बाहर चले गये। गिरीशबाबू ने शरच्चन्द्र को कहा, ''बंगाल, तुमने देखा! कितना प्रेममय हृदय है! मैं तुम्हारे स्वामीजी का इसलिए सम्मान नहीं करता, क्योंकि वे वेदों के पंडित हैं, अपितु मैं उनके उस उदार हृदय का सम्मान करता हूँ, जो अपने देशवासियों की दुरावस्था के कारण एकान्त में रोता है।''

शेष भाग पृष्ठ २७ पर

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२५)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

खड़दह

मेरी खड़दह के श्यामसुन्दर तथा नित्यानन्द महाप्रभु के निवास को देखने की बड़ी इच्छा हुई। मठ से पैदल चलकर दोपहर में करीब बारह बजे मैं खड़दह पहुँचा। वहाँ एक सम्पन्न ब्राह्मण के घर में जाकर अतिथि बना। उसी मकान में पिछले दिन महाभारत की 'कथा' का समापन हुआ था। कथावाचक का नाम था गोलोक शिरोमणि और वे हालीशहर के निवासी थे। सुना कि उसी दिन अपराह्न में शिरोमणि महाशय हालीशहर से आकर अपनी 'कथा' की दक्षिणा ग्रहण करेंगे।

दोपहर को भोजन आदि करने के बाद मैं मुख्य द्वार के निकट स्थित एक बरामदे में विश्राम कर रहा था, तभी – गेरुआ वस्त्र पहने, गले में रुद्राक्ष धारण किये, हाथ में पुराने ढंग का एक कैनवास का बैग लिये, पसीने से लथपथ एक सज्जन वहाँ आकर उपस्थित हुए। आते ही वे भी बरामदे में बैठ गये। पता चला कि ये ही शिरोमणि महाशय हैं। मेरा परिचय पाकर वे हाथ जोड़े बारम्बार ठाकुर को प्रणाम करके बोले, "मेरे दूर के रिश्ते के एक भाई – केदार चैटर्जी – परमहंसदेव के परम भक्त हैं। वे नियमित रूप से दक्षिणेश्वर जाया करते थे।"

करीब चार बजे तक उनके साथ ठाकुर के विषय में ही चर्चा होती रही। सुना कि केदार बाबू के साथ शिरोमणि महाशय को भी दक्षिणेश्वर जाकर ठाकुर के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

मैं जब खड़दह पहुँचा था, उस समय श्यामसुन्दरजी शयन कर रहे थे। इसीलिये वहाँ एक रात निवास करने की मेरी इच्छा तो थी ही; शिरोमणि महाशय ने भी मुझसे एक रात वहाँ ठहर जाने का अनुरोध किया।

शाम को पाँच बजे से ही आकाश में बादल घिरने लगे और हलकी-सी बूँदाबाँदी भी होने लगी। 'कथा' की व्यवस्था देखने के बाद मैं श्यामसुन्दर का दर्शन करने गया। जब मैं ठाकुरजी का दर्शन करके लौटा, तब 'कथा' का समापन करते हुए शिरोमणि महाशय गा रहे थे – "पंकज-दलगत-जलमिव चंचलमिह जीवनम् ...।" थोड़ी देर बाद ही कथा समाप्त हुई। उसके बाद बाहर के दो कमरों में से एक में उन्होंने और दूसरे में मैंने आश्रय लिया।

रात के करीब आठ बजे घर के मालिक स्थानीय हरिसभा में भाग लेने चले गये। शिरोमणि महाशय भी थोड़ी देर बाद ही शौच करने गये। आधे घण्टे के भीतर ही उन्हें तीसरी बार शौच के लिये जाते देखकर मैंने शंकित मन से पूछा, "कैसा हुआ?" वे बोले, "जलवत्-तरलम्।" मैंने पूछा, "महाशय, आपने क्या खाया था?" वे बोले, "नहीं, नहीं, भय की कोई बात नहीं। वैसे मैंने मछली का झोल और आम-दूध के साथ, थोड़े-से चावल खाये थे। देखिये, हालीशहर का स्टेशन हमारे घर से काफी दूर है और यहाँ का खड़दह स्टेशन भी पास नहीं है। इस धूप में इतना रास्ता चलने के फलस्वरूप ही ऐसा हुआ होगा।"

चौथी बार शौच से लौटने के बाद वे लड़खड़ाते हुए आकर धरती पर लोट गये और छटपटाते हुए करुण भाव से कहने लगे, "महाशय, आपकी जो आशंका थी, लगता है कि वही हुआ है! बाप रे, शरीर जल रहा है!" मेरा शरीर शीतल था, इसलिये वे बारम्बार मेरे शरीर से लिपटने लगे। तभी घर के मालिक लौटे और मैंने उन्हें सारी बातें खोलकर बता दीं। वे क्लोरोडीन की एक शीशी ले आये और रोगी को उसकी एक खुराक पिलाने को कहा। उन्हें वह दवा खिलाने के बाद, मैं भोजन करने घर के भीतर गया।

बाबू भी मेरे साथ खाने को बैठे। भोजन के बाद वे बोले, "धूप लगने के कारण ही शिरोमणि महाशय की ऐसी अवस्था हुई है। क्लोरोडीन पिला देने से ही वे स्वस्थ हो

जाएँगे। आप उनके लिये जरा भी चिन्ता मत कीजिएगा।'' इतना कहने के बाद बाबू ने दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। उस समय रात के करीब दस बजे थे।

बाहर आकर मैंने देखा कि शिरोमणि महाशय की हालत और भी बिगड़ चुकी है। हर पाँच मिनट बाद उनकी हालत में बदलाव आने लगा। हाथ-पाँवों में ऐठन होने लगी। राहत पहुँचाने के लिये मैं उनके हाथ-पाँव दबाने लगा।

केवल एक छोटे-से लोटे में पीने का पानी रखा था। और भी थोड़ा-सा जल लेने तथा डॉक्टर को बुलवाने हेतु रात के करीब एक बजे मैं अन्दर के दरवाजे के पास खड़ा होकर घर के मालिक को पुकारता रहा और द्वार पर धक्के भी मारे, परन्तु भीतर से कोई आवाज नहीं आयी। तब मैं उस लोटे से ही थोड़ा-थोड़ा पानी उन्हें पिलाने लगा और स्वयं भी प्यास से त्रस्त होकर 'आपो नारायण: स्वयम्' कहते हुए थोड़ा-थोड़ा पीने लगा।

रात के तीन बजे के बाद, भीतर से एक विधवा ब्राह्मण-कन्या उन्हें देखने आयीं। उसी समय उन्हें एक उलटी और हुई। इसके बाद वे विधवा उनकी सेवा-शुश्रुषा में लग गयीं। घर के मालिक ने उन्हें भोजन आदि पकाने के लिये किसी अन्य गाँव से बुलवाकर रखा था।

रात के पिछले पहर में यदि कोई आया होता, तो मैं जाकर किसी चिकित्सक को बुला लाता। ब्राह्मण पीड़ा से उद्विग्न होकर कई बार बोले, ''क्या इसी को मृत्यु-यंत्रणा कहते हैं!'' भोर के समय उन्होंने अपने घर टेलीग्राम भेजने को कहा।

सुबह के समय घर के मालिक बाहर आये और एक होम्योपैथिक डॉक्टर को बुलवाया। आने के बाद चिकित्सक ने उनके मल तथा शरीर का निरीक्षण करके, उन्हें हर पाँच मिनट बाद एक दवा देने की व्यवस्था की और बोले, ''इनके बचने की अब कोई आशा नहीं है।'' जाते समय डॉक्टर ने मुझसे कहा कि मैं खड़दह छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाऊँ।

उनके घर हालीशहर में तार भेजने के बाद, ठीक बारह घण्टों के भीतर करीब आठ बजे शिरोमणि महाशय की मृत्यु हो गयी।

करीब दस बजे शिरोमणि महाशय की पत्नी, उनके दो पुत्र, एक विधवा कन्या और एक दामाद वहाँ आ पहुँचे। इन शोकातुर लोगों का मर्मभेदी आर्तनाद असह्य हो उठा। ब्राह्मण के दो पुत्र और एक जमाई वहाँ उपस्थित थे; एक ब्राह्मण और मिल जाने पर उन्हें श्मशान पहुँचाया जा सकता था। परन्तु दुख की बात यह है कि खड़दह के समान ब्राह्मण-बहुल स्थान में भी एक अन्य ब्राह्मण की व्यवस्था करने में काफी कठिनाई हुई थी।

अन्तिम संस्कार सम्पन्न हो जाने के बाद शिरोमणि महाशय के सगे-सम्बन्धी रोते हुए, मुझसे विशेष अनुरोध कर गये कि एक बार मैं उनके हालीशहर के घर में अवश्य आऊँ।

मैं खड़दह से 'नन्द-दुलाल' का दर्शन करने साँईमाना गाँव गया और वहाँ एक रात बिताने के बाद मठ में लौट आया।

नागेश्वर चम्पा

हमारे ठाकुर श्रीरामकृष्णदेव को नागेश्वर चम्पा के फूल विशेष प्रिय थे। नागेश्वर चम्पा देखकर उन्हें समाधि लग जाती और वे कहते, ''श्रीमती राधा के अंग से नागेश्वर चम्पा का मधुर गन्ध नि:सृत होता रहता है।''

नागेश्वर चम्पा का फूल

स्वामी ब्रह्मानन्द की बड़ी इच्छा थी कि दक्षिणेश्वर में इस नागेश्वर चम्पा का एक पौधा लगाया जाय। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं बागमारी तथा मानिकतला की नर्सरी में जाकर वहाँ से नागेश्वर चम्पा का एक पौधा ले आऊँ। परन्तु उन नर्सरियों में उसका एक भी पौधा नहीं मिला।

आलमबाजार-मठ में निवास करते समय स्वामी रामकृष्णानन्द ने ठाकुरजी को अर्पित करने के लिये मुझसे वह फूल लाने को कहा। उन्हीं से पता चला कि डी. गुप्त के उद्यान में उस फूल का पेड़ है। एक दिन सुबह सुबोधानन्द और मैं बैरकपुर की ओर जानेवाले ट्रंक रोड से चलकर डी.

शेष भाग पृष्ठ २४ पर

भगवान श्रीरामकृष्णदेव की प्रासंगिकता

स्वामी गौतमानन्द

(स्वामी गौतमानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ चेन्नई के अध्यक्ष हैं। उन्होंने यह व्याख्यान ८ मई, २०१५ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में दिया था, जिसका अनुलेखन सुश्री क्षिप्रा वर्मा ने किया है। - सं.)

(गतांक से आगे)

आधुनिक समाज में हम व्यावहारिक वेदान्त का जीवन यापन करना चाहते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण हमें दूसरा बहुत सुन्दर आध्यात्मिक मूल्य बताते हैं, वह है पवित्रता। अपने मन को पवित्र रखो। पवित्रता क्या है? यह वह वस्तु है, जिससे हम अपने समाज में, अपने अड़ोस-पड़ोस में सबको अपने परिवार के जैसा ही समझते हैं। जैसे हमारे परिवार में मेरी माँ है, मेरे पिताजी हैं, मेरे भाई, मेरी बहनें हैं। दो भाई, पिताजी और माँ है। यदि कोई पूछा कि तुम्हारे परिवार में कौन-कौन है? तो मैं क्या कहूँगा? उसका उत्तर मैं दूँगा – मेरे पिताजी, मेरी माताजी और मेरी दो बहनें और दो भाई हैं। यही तो हम उत्तर देंगे। ऐसा बोलने में एक अपनापन है। एक दूसरे प्रकार से भी उत्तर हो सकता है, किन्तु वैसा हम नहीं कहते हैं। वह कैसा? कह सकते हैं कि हम तीन पुरुष और तीन महिलाएँ हैं। दो बहनें और माँ तीन महिलाएँ हो गयीं और हम दो भाई और पिताजी तीन पुरुष हो गए। उत्तर तो ठीक ही है, किन्तु क्या कोई लड़का ऐसा उत्तर देगा? नहीं देगा, क्योंकि ऐसे में कोई अपनापन नहीं है। लोग कहेंगे, कैसा अशिष्ट है, अपने परिवार के लोगों को स्त्री-पुरुष कहकर बात करता है। परिवार में तो भाई-बहन, माताजी-पिताजी होते हैं। अत: मनुष्य को स्त्री-पुरुष के रूप में मत देखो। मनुष्य को भाई-बहन के रूप में देखो। महिलाओं को माता और बहनों के रूप में देखो। पुरुषों को पिता और भाइयों के रूप में देखो। इसे आध्यात्मिकता का अंश कह सकते हैं। ऐसी आध्यात्मिकता का अभ्यास करना चाहिये। यही पवित्रता है।

१० दिसम्बर १८८१ को बंगाल फोटोग्राफर स्टूडियो, कलकत्ता में श्रीरामकृष्णदेव का लिया गया चित्र

यदि मैं किसी को देखते ही कहूँ, अरे! ये तो मेरी छोटी बहन जैसी है, ये मेरी बड़ी बहन जैसी है, ये माँ जैसी है, ये मेरे पिताजी जैसे हैं। यदि यह भाव आ जाये, तो उससे मन पवित्र रहता है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव का आधुनिक युग को यह पवित्रता सबसे बड़ा उपदेश है। हमें अपने मन को शुद्ध रखना चाहिये। मन को शुद्ध रखने के लिये मनुष्य को स्त्री-पुरुष के रूप में मत देखो, बहन-माता, भाई-पिता के रूप में देखो। जब यह पवित्रता हमारे जीवन में आती है, तो हम अपने आप आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ जाते हैं।

तीसरी बात श्रीरामकृष्ण कहते हैं – नि:स्वार्थ बनो, नि:स्वार्थ बनो, नि:स्वार्थ बनो। यदि हममें स्वार्थ है, तो हममें और अन्य पशु-प्राणी में क्या भेद है? वह भी अपने जीने के लिए खाना खाता है, पानी पीता है, मजे में रहता है। हम भी केवल अपने लिये खाएँ, पीएँ, आनन्द करें, तो हममें और अन्य प्राणियों में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। फिर हम अपने को छोड़कर दूसरों के लिये कुछ करते हैं, इसमें हमारा धर्म होता है। इसीलिये कहा गया – ''**धर्मो हि एको अधिको विशेष:, धर्मेण हीना: पशुभि: समाना:**'' – धर्म ही मनुष्य और पशु को अलग करता है। पशुओं में नि:स्वार्थता अथवा दूसरों के लिये कुछ करने का ज्ञान नहीं होता है। वे तो मिला तो खाए और चल दिए। किन्तु हम पशु नहीं हैं। हम देवता बननेवाले प्राणी हैं। हमें देवता बनने के लिये अगला कदम उठाना चाहिये। यदि हम देवता बनने वाले हैं, तो हमें निस्वार्थ होना चाहिये। हमें सोचना चाहिए कि समाज कितना कुछ करता है हमारे लिए, तो हम भी कुछ समाज के लिये करें।

आप सब लोगों को देखता हूँ, यहाँ बड़े सुन्दर कपड़े पहनकर बैठे हुए हैं। इस कपड़े को क्या आपने बनाया? इसको बनाने के लिये कितने हजार लोगों ने दिन-रात काम किया। आपने जाकर थोड़ा सा पैसा दिया और कपड़ा दुकान से लाकर पहन लिया। इसको बनाने में हजार-हजार लोगों ने शरीर का कष्ट भोगकर परिश्रम किया। क्या उनके लिए हम कुछ नहीं सोचेंगे?

आप यहाँ आने के पहले शायद चाय पीकर आये हैं,

नहीं तो शायद खत्म होते ही चाय पीएँगे। क्या आपने कभी चाय बोया? चायपत्ती के बगीचे को कभी आपने देखा है? आपने कभी गाय का दूध दूहते देखा है? हमारे शहर के एक बच्चे को पूछा गया। दूध कहाँ से मिलता है? वह कहता है, डेयरी से मिलता है। गाय से मिलता है, वह बोल ही नहीं सकता। गाय को देखा ही नहीं उसने। वह गाय कहाँ रहती है? वह गाँव कभी गया ही नहीं। वह रोज देखता है कि दूध पैकेट में आता है, इसलिये ऐसा बोलता है। समाज से हम कितना लेते हैं! अत: हमको समाज को देना भी चाहिये। आप छत्तीसगढ़वासियों को पता है कि अभी-अभी हमारे नारायणपुर के स्वामीजी ने शासन की मदद से कई गाँवों में करीब-करीब दो सौ से अधिक ट्यूबवैल्स खुदवाये। दो सौ गाँववालों के पीने के पानी की व्यवस्था की। पहले उन गाँवों में पीने का पानी नहीं मिलता था।

भगवान श्रीरामकृष्ण के एक भक्त बहुत पैसे वाले थे। उन्होंने उनसे कहा – तुम्हारे पास बहुत पैसा है। गाँव में बेचारे बहुत लोग पानी के लिये तरस रहे हैं, पीने का पानी नहीं मिल रहा है। तुम्हारे पास तो पैसा है, उनके लिये सहायता करो। श्रीमाँ ने इसको और भी थोड़ा उन्नत करके कहा - ''जिसके पास पैसा है, वह पैसे से सहायता करे, जिसके पास पैसा नहीं है, उसको भी सहायता करनी चाहिये। कैसे? मन से उनके लिये प्रार्थना करो। मन से उनके लिये जप करो। उनसे प्रेम से अनुकम्पा की दो अच्छी बातें करो।'' इसका अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति सेवा कर सकता है। यह तीसरा बहुत बड़ा आध्यात्मिक मूल्य है, जिसका जीवन में आचरण करने से भगवान प्राप्त होंगे।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं – भगवान पर विश्वास रखो और उनसे प्रार्थना करो। भगवान हैं। वे हमारे माता-पिता हैं। हमारे हृदय में ही है। हमारे साथ हैं। उनके अन्दर अनन्त आनन्द है। अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त जीवन है। हम उनके अंश हैं। इसीलिये हमेशा भगवान हैं, इस पर विश्वास रखो।

कैसे हैं? तुम्हारी-हमारी आत्मा के जैसे हैं। वे सभी की आत्मा हैं। तुम्हारे साथ हैं। वे हमारे साथ भी रहते हैं। उनका स्वभाव क्या है? वे अनन्त आनन्दस्वरूप हैं। अनन्त जीवन के स्वरूप हैं। अनन्त ज्ञानस्वरूप हैं। इसका अर्थ क्या होता है? मैं भगवान को अगर प्राप्त करूँ, तो आँखों के सामने जैसा देखता हूँ, भगवान को वैसा नहीं देखूँगा। जब मैं इस माईक को देखता हूँ, तो मैं स्वयं माईक नहीं बन जाता। माईक, माईक ही रहता है। मुझे इसका ज्ञान होता है। भगवान का ज्ञान ऐसा नहीं होता है। जब भगवान का ज्ञान होगा, तब आप गायब होंगे। यह मालूम नहीं पड़ेगा कि मैंने भगवान को देखा। जिस-जिस को आत्मज्ञान हुआ, जिस-जिस को भगवान का ज्ञान हुआ, सब अपने को भूल गये। भगवान को ही बस देखा। श्रीरामकृष्ण कहते हैं अपने अन्दर 'मैं' ढूँढ भी नहीं पाता। 'मैं' कह ही नहीं पाता हूँ। पहले ऐसी अवस्था थी, वे अपने को 'मैं' ही नहीं बोल पाते थे। 'इसने ऐसा किया है' कहकर अपने शरीर को दिखाते थे। तब किसी ने उनसे हाथ जोड़कर कहा – प्रभु, आप ऐसा कहते हैं, तो हमारे समझने में बड़ी कठिनाई होती है। आप 'मैं' ही बोलिये। आपमें तो अहंकार नहीं है। आपके अन्दर तो परमात्मा का अहंकार है। उन लोगों की विनती के बाद भी वे 'मैं' नहीं बोल पाते थे। जब भगवान का दर्शन होता है, तब 'मैं' चला जाता है, तब अनन्त आनन्द का बोध हो जाता है। अरे! मुझे अनन्त आनन्द मिल गया। उपनिषद में एक मंत्र है – हाहूहाहू, ऐसा बोलते हैं। ये हाहूहाहू क्या है? छोटे बच्चे को देखिये। उसको भूख लगी थी। आपने उसको चार चम्मच दूध पिला दिया। उसकी भूख मिट गयी। अब वह हाहूहाहू कर हँसता रहता है। यह आनन्द की अभिव्यक्ति है। उसको अब कुछ नहीं चाहिये। भगवान के बोध से तुम अपने अनन्त आनन्दस्वरूप का ही बोध करोगे। इसी तरह अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति का बोध करोगे और ये बोध करोगे कि मेरा कभी मरण नहीं होगा। मैं हमेशा भगवान के साथ रहा और हमेशा रहता रहूँगा। उनकी लीला के लिये उनकी इच्छा से कुछ दिन के लिये हम आये हुये हैं। श्रीरामकृष्ण ऐसे भगवान हैं। तुम्हारी आत्मा के अन्दर ही हैं। उनका साक्षात्कार तुमको होगा। इसमें विश्वास रखो और उनसे प्रार्थना करो। हमारी कठिनाई यह है कि हमें प्रार्थना करना भी नहीं आता है। महाराज कैसे प्रार्थना करें? अरे प्रार्थना तो तुम बचपन से ही करते आये हो। माँ के पास दूध दो, दूध दो, हमको कपड़ा दो, हमको बूट पहना दो। हमको हाथ पकड़ के ले जाओ, इस प्रकार तो प्रार्थना करते ही आये हैं। ऐसे ही भगवान से भी कहो। जो चाहो तुम भगवान से कहो। भगवान की ओर मुँह करके, जैसा सोचकर जो बोलोगे वही प्रार्थना है। भगवान को पहले सच समझो। वे हैं, ऐसा समझो। तुम्हारे साथ ही हैं, ऐसा समझो। ऐसे भगवान से प्रार्थना करते रहो तुम आगे बढ़ते जाओगे।

ये चार मूल्य ही आध्यात्मिकता बढ़ाते हैं। तुम्हारे अन्दर सत्य रहे, तुम्हारे अन्दर नि:स्वार्थता रहे, तुम्हारे अन्दर पवित्रता रहे, तुम भगवान में विश्वास करो और प्रार्थना करते जाओ। जो भी चाहो उनसे प्रार्थना करो, तो अवश्य मिलेगा। कुछ लोग कहते हैं – अगर हम खराब चीज चाहें। हमें विष दो, ऐसा चाहें, तो क्या हमें विष दे देंगे? तुम्हारे पिताजी तुम्हें विष नहीं देंगे, तो वे कैसे देंगे? आपके चाहने से वे नहीं देंगे। आपके लिए जो हितकर है, उसे ठीक समय आने पर देंगे। इसके लिये वे प्रतीक्षा भी करेंगे। क्योंकि वे आपके माता-पिता हैं। यही भगवान श्रीरामकृष्ण देव का संदेश है।

अब एक अंतिम प्रश्न का उत्तर देकर मैं अपनी बात समाप्त करूँगा। आज आधुनिक लोग कहते है - महाराजजी, आप क्यों भगवान, आध्यात्मिकता के बारे में बोलते हैं। हम ऐसे ही आनन्द में हैं। हमारे पास चलाने के लिये गाड़ी है। रहने को अच्छा घर है। ए.सी. भी लगाया है। आप कहते हैं कि ये सब छोड़ दीजिये। पहनने के लिये कपड़े हैं। किसी-किसी के पास चार कपड़े से चालीस कपड़े रखे होंगे। क्या ये चालीस कपड़े आप एक साथ पहनेंगे? आप कभी नहीं पहनेंगे, किन्तु इन कपड़ों की सारे दिन सेवा आप कर रहे हैं। उसको आपकी सेवा करनी चाहिये, लेकिन उसकी सेवा आप कर रहे हैं। आपका समय नष्ट हो रहा है। ऐसा नहीं होना चाहिये। सरल जीवन-यापन करो। भगवान श्रीरामकृष्ण के पास ऐसा प्रश्न किसी ने किया होगा। उसका एक ही उत्तम उत्तर है, वे कहते हैं - हाँ, मान लिया कि सारा जीवन तुम आनन्द से रहोगे। तुम्हारे घर में भी आनन्द है, बाहर में भी आनन्द है, नाम-यश भी हुआ है। चमकदार गाड़ी है। सब कुछ है। कितने दिन रहोगे इस संसार में? एक दिन आयेगा, जब इस संसार को छोड़कर जाना ही पड़ेगा। तब क्या करोगे? तब तुम्हारा मन कैसा रहेगा? सोच के देखो। अभी इस मस्ती में हो कि हम आनन्द से हैं। तुम अभी तीस में हो। चालीस आने से कष्ट चालू हो जायेगा। तब इन आँखो में चश्मा पहनोगे। पचास आयेगा, तो कानों की पीड़ा शुरु हो जाएगी। तब कान के लिये एक श्रवण यंत्र लगाओगे और उसके बाद साठ होगा, सत्तर होगा, दाँत गिरने लगेंगे, तब सोचोगे कि ये क्या हो रहा है? ऐसा होगा और अन्त में सब कुछ चला जायेगा। क्यों नहीं जायेगा? जायेगा ही जायेगा, क्योंकि तुम भाड़े के घर में हो। भाड़े के घर में कितने दिन रहने को देगा। जब तक किराएदार अपना घर नहीं चाहता है। किराएदार दूसरी जगह रहता है, जब वह अपने घर में रहना चाहेगा, तब एक महीने की नोटिस देकर कहेगा - हमारा घर खाली कर दो। आपको कितना भी उस भाड़े के घर से प्रेम रहे, तो भी छोड़ना पड़ेगा। हम सब भाड़े के घर में रह रहे हैं। सौ साल के बाद वह मालिक आयेगा। कहेगा कि हमारा घर छोड़कर आप लोग चले जाइये। कहाँ जायेंगे?

मैं आपको इसका एक उदाहरण देता हूँ। सभा चल रही है। सभा समाप्त हो जाने के बाद आपलोग कहाँ जायेंगे? अपने-अपने घर जायेंगे। अगर कोई अपने मित्र के घर आया है और पता लिखकर नहीं लाया हैं, कहाँ जाना है, आपको पता नहीं। आपके पास टेलीफोन नम्बर भी नहीं है, तो सब लोग चले गये, किन्तु आप रास्ते में खड़े रहेंगे। लोग आकर पूछेंगे – आप यहाँ क्यों खड़े हैं? आप कहेंगे, हमें कहाँ जाना है, यह पता नहीं है। लोग आश्चर्यचकित होकर कहेंगे, अरे कहाँ जाना है, पता नहीं! अरे, इन्हें पुलिस को बुलाकर पुलिस स्टेशन भेज दो। यही एक रास्ता है। यह तो बहुत बड़ी बेइज्जती की बात है !

जब जाने का समय आयेगा, तो जाना ही पड़ेगा। हमारा समय आयेगा ही आयेगा। तब कहाँ जाना है, उसका नाम-पता अभी से जानकर रखो। कहाँ जाएँगे, आपको पता मालूम है? जिसको पता मालूम है, उसको कोई समस्या ही नहीं है। हम जहाँ से आये हैं, वहीं जाएँगे। इसलिए भगवान के बारे में थोड़ा-सा जान लो। वे कौन हैं? वे भगवान हमारी आत्मा की आत्मा हैं। उनको पुकारते रहो, तो वे ही आपको समझा देंगे। अरे तेरा कोई नहीं है यहाँ। तेरे अन्तिम समय में मैं ही तुम्हारा हाथ पकड़कर ले जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण बार-बार कहते हैं कि जो मेरा नाम लेते हैं, मेरी उपासना करते हैं, मेरा चिन्तन करते हैं, अन्त समय में मैं हाथ पकड़कर ले जाऊँगा। ऐसे भगवान को जानकर रखना चाहिये। इसीलिये भगवान की आवश्यकता है। संसार का आनन्द क्षणिक है, यह चला जायेगा। अनन्त असीम शाश्वत आनन्द ही सत्य है। ऐसे भगवान को जानकर रखना। भगवान को जानने के लिये सरल मार्ग है – सत्य, पवित्रता, नि:स्वार्थता, भगवान पर विश्वास और प्रार्थना। ये श्रीरामकृष्ण हमें सिखाते हैं। इसे हम धीरे-धीरे पालन करने के लिये क्या गुफा में चले जायेंगे? क्या सब संन्यासी हो जायेंगे? श्रीरामकृष्ण ने कभी नहीं कहा – संन्यास लो। उनके शिष्यों में से किसी-किसी ने संन्यास माँगा, लेकिन उन्होंने

कहा - नहीं, तुम संन्यासी मत बनो।

गिरीशचन्द्र घोष ने कहा – हमें संन्यास दे दीजिये। उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, तुम ड्रामा कर रहे हो, तुम्हारे ड्रामा से बहुत लोगों को लाभ हो रहा है। वही करते जाओ। वे गुरु की आज्ञा को मानकर, जीवन के अन्तिम क्षण तक ड्रामा करते रहे। आखिरी ड्रामे में उन्हें केवल एक धोती पहनकर खाली शरीर में जाना पड़ा। वह शीत-काल था। उस शीत-काल में वे स्टेज पर खाली वदन ही गये। आधे घंटे तक ड्रामा में अभिनय किया। उनको श्वास रोग, अस्थमा था। फिर भी उन्होंने वह ड्रामा किया। क्योंकि वे कहते थे कि हमारे गुरुदेव ने कहा है, उनकी आज्ञा-पालन के लिये मुझे अभिनय करना चाहिये। यह सोचकर अन्तिम दिन तक वे अपना कर्तव्य निभाते रहे। इसी तरह आप सब लोगों को भी भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि अपने कर्तव्य को छोड़-छाड़कर जाने की जरूरत नहीं है। तुम जहाँ भी हो, वहीं आध्यात्मिक मूल्यों को अपने जीवन में लाओ और भगवान से प्रार्थना करते रहो। आपके अन्तिम समय में वे आकर हाथ पकड़ कर ले जायेंगे। अन्तिम समय के पहले भी उनका दर्शन हो सकता है। पहले भी आपके सपने में आएँगे, आपको दर्शन देंगे। आपको समझा देंगे कि मैं हूँ। हमेशा तुम मेरे साथ हो। आप हमेशा इस आनन्द का अनुभव करें। भगवान श्रीरामकृष्ण, सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द सदैव हम पर आशीर्वाद करें, सदैव हम पर अपनी कृपा-वर्षण करें, यही प्रार्थना करते हुये, आप सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुये अपने शब्दों को विराम देता हूँ। नमस्कार! धन्यवाद! जय रामकृष्ण! ***(समाप्त)*** ○○○

विष भी अमृत बन जाए जब कृपा करें नन्दलाल

शरद चन्द्र पेंढारकर

राव विक्रमाजीत ने जब देखा कि कुल की लाज-मर्यादा को छोड़कर मीराबाई कृष्ण के प्रेमरस में डूबकर अहर्निश नर्तन-भजन करती है, तो उन्होंने साम-दाम-दंड-भेद चारों उपायों से रोकने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु कोई प्रभाव न देख उनका धैर्य टूट गया। उन्होंने अपने विश्वासपात्र सेवक दयाराम पंडा के हाथों दूध के प्याले में विष घोलकर मीराबाई के पास भेजा। मीराबाई की ननद ऊदाबाई की एक विश्वस्त सखी ने प्याले में विष होने की बात बताई। उसने मीराबाई को दूध पीने से मना किया –

भाभी राणाजी कियौ थोरे पर कोप।
कनक कटोरे विष घोलियो।।

मीराबाई ने उत्तर दिया – मैं इसे कर-चरणामृत समझकर अवश्य पीऊँगी –

बाई ऊदा खोल्यो घोलण दा।
कर चरणामृत वही है पीवस्यो।।

ऊदाबाई बोली, "यदि इस प्याले को तुम्हारे पिताजी ने भेजा होता, तो क्या तुम इसे ग्रहण करती? मीराबाई ने उत्तर दिया, "एक बार कन्यादान करने के बाद पिता के लिए कन्या मर चुकी होती है। इसलिए वे कन्या के घर का जल ग्रहण नहीं करते। तब भला मैं कैसे उनके द्वारा दी गई चीज को ग्रहण करती? फिर बोली –

कनक कटोरे लै बिस घोल्यो दयाराम पंडो।
अठी-उठी तो मैं देख्यों कर चरणामृत पायो।।

जब मैंने कोई कुकर्म नहीं किया, तो मैं इस विष के प्याले को प्रियतम का कर-चरणामृत समझकर क्यों न पीऊँ! मेरी आत्मा प्रियतम परमात्मा को मिलने के लिए अधीर है। विषपान करने से शरीर छूटकर आत्मा-परमात्मा का सहजता से मिलन हो सकेगा और उन्होंने झट से प्याला ओठों से लगा दिया। किन्तु करुणानिधान नन्दलाला की कृपा से विष अमृत में बदल गया और उसका उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

जिस भक्त का हृदय-आराध्यदेव की भक्ति से ओत-प्रोत रहता है तथा उसकी मनमोहक छवि के रसपान में आकंठ डूबा रहता है, उसे संकट में देख लीलामय प्रभु सत्वर दौड़कर उसकी रक्षा करते हैं। ○○○

संगति का प्रभाव

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने से ठीक पूर्व महारथी अर्जुन ने अपना प्रसिद्ध गांडीव धनुष नीचे रख दिया। वह पूर्ण रूप से किंकर्तव्यविमूढ़ हो चुका था। तब उसके सखा श्रीकृष्ण ने उसे धर्म का मार्ग दिखलाया। इतना ही नहीं, उसे उसके कर्तव्य को चरितार्थ करने को बाध्य भी किया। यहीं हम अच्छी संगति का महत्त्व समझ सकते हैं। वहीं दूसरी ओर दुर्योधन सदैव कुटिल शकुनी के परामर्श से चला करता था। शकुनी से विचार-विमर्श करके वह सदैव अधर्म का पालन करता रहा और अन्त में कुलनाशक बना। इस प्रकार इन दोनों उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हमारे जीवन में हमारी संगति का गहरा प्रभाव पड़ता है। इस तथ्य पर हितोपदेश में बहुत उत्कृष्ट बात कही गई है –

हीयते हि मतिस्तात, हीनैः सह समागमात्।

समैश्च समतामेति, विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।।[१]

अर्थात् हीन लोगों की संगति से अपनी भी बुद्धि हीन हो जाती है, समान लोगों के साथ रहने से समान बनी रहती है और विशिष्ट लोगों की संगति से विशिष्ट हो जाती है। इस प्रकार हमें अपनी संगति के विषय में अत्यन्त सावधान होना चाहिए। आइए, इस विषय पर विचार करें –

सत्संग का महत्त्व – यदि कभी कोई दुष्ट व्यक्ति साधु का वस्त्र पहनकर साधुओं के दल में आ जाए, तो लोग उसे भी नमस्कार करते हैं। उसी प्रकार दुष्टों के दल में यदि कोई सज्जन व्यक्ति रहे, तो लोग उसे भी दुष्ट ही समझते हैं। इस प्रकार हमारी संगति के अनुसार हमारा भी मोल आँका जाता है। जिस प्रकार शिव की पूजा होने पर उनके साथ उनकी जटा में स्थित टेढ़े चन्द्रमा की भी पूजा होती है, वैसे ही अच्छी संगति होने पर व्यक्ति का मोल बढ़ जाता है। **''यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते''**। (जिनके आश्रित होने से टेंढ़ा चन्द्र भी सर्वत्र पूजित होता है)[२]

जिस प्रकार कामधेनु इच्छित वस्तु प्रदान करती है, उसी प्रकार कल्पतरु कल्पित, अभीप्सित वस्तु प्रदान करता है, परन्तु सत्संग से सब कुछ पाया जाता है। तुलसीदासजी इस सम्बन्ध में लिखते हैं –

मति कीरति गति भूति भलाई।

जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।।

सो जानब सतसंग प्रभाऊ।

लोकहूँ बेद न आन उपाऊ।।[३]

अर्थात् इनमें से जिसने, जिस समय, जहाँ कहीं भी, जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति, ऐश्वर्य और भलाई पाई है, वह सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिए। वेदों में और लोक में उनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

संगति एक आवश्यक अंग – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए संगति का होना भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। समाज में रहते हुए कुछ लोग अच्छी संगति में रहते हैं और कुछ बुरी संगति में। अधिकांशतः हम अपनी संगति का चयन अपने संस्कारों के अनुसार करते हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि बुरा व्यक्ति कभी अच्छा नहीं बन सकता। यदि हम चाहें, तो अपने संस्कारों को बदलने के लिए अच्छी संगति में रहने का प्रयास कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण वचनामृत के रचयिता श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त श्रीरामकृष्ण देव से तीन बार मिल चुके थे। तत्पश्चात् उन्हें उनके सान्निध्य की तीव्रतम इच्छा होने लगी। इस प्रसंग में वे लिखते हैं, ''मास्टर को कमरे में प्रवेश करते देख श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा, 'यह देखो, फिर आया।' सब हँसने लगे। मास्टर ने भूमिष्ठ हो प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। पहले वे खड़े-खड़े हाथ जोड़कर प्रणाम करते थे, जैसाकि अँग्रेजी पढ़े-लिखे लोग करते हैं। पर आज उन्होंने भूमिष्ठ होकर प्रणाम करना सीखा। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्रादि भक्तों से कहने लगे, 'देखो एक मोर को किसी ने चार बजे अफीम खिला दी। दूसरे दिन में वह अफीमची मोर ठीक चार बजे आ जाता था। यह भी अपने समय पर आया है।'' सब लोग हँसने लगे। मास्टर सोचने लगे, ये ठीक तो कहते हैं। घर जाता हूँ, पर मन दिन-रात यहीं पड़ा रहता है। कब जाऊँ, कब उन्हें देखूँ, इसी विचार में रहता हूँ। यहाँ मानो कोई खींच ले आता है! इच्छा होने पर भी दूसरी जगह जा नहीं पाता, यहीं आना पड़ता है।''[४] हमारे मन की ऐसी ही स्थिति होती है, वह जिस संगति में पड़ता है, उसे उसकी लत ही लग

जाती है। यदि हमें संगति करनी ही हो, तो क्यों न हम अपने मन को अच्छी संगति में जाने का अभ्यास कराएँ ?

संगति से पहचान – शंकराचार्य विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए अद्वैतवाद का प्रचार-प्रसार कर रहे थे तथा स्थानीय पंडितों से शास्त्रार्थ भी किया करते थे। इसी प्रकार वे महापंडित मंडन मिश्र के मिथिला नगर पहुँचे। जब शंकराचार्य के एक शिष्य ने वहाँ कुएँ पर पानी भर रही महिलाओं से पूछा कि पंडित मंडन मिश्र का घर कहाँ है? तब उनमें से एक स्त्री ने कहा कि जिस दरवाजे पर तोते शास्त्रार्थ कर रहे हों, वही पंडित मंडन मिश्र का घर होगा। शिष्यों सहित शंकराचार्य अग्रसर हुए और उन्हें मंडन मिश्र का घर खोजने में कोई असुविधा नहीं हुई। एक घर के द्वार पर तोते शास्त्रार्थ कर रहे थे। तब उन लोगों ने यह समझ लिया कि यही महापंडित मंडन मिश्र का घर है। जिस प्रकार शास्त्रार्थ सुन-सुनकर मंडन मिश्र के तोते भी शास्त्रार्थ करने लगे, उसी प्रकार अच्छी संगति में रहकर व्यक्ति का स्वभाव भी अच्छा होता जाता है। यह विशेषता तोतों की नहीं, बल्कि मंडन मिश्र की है कि उनकी संगति पाकर उनके तोते भी शास्त्रार्थ करने लगे। यदि हमें किसी व्यक्ति को पहचानना हो, तो हमें उसकी संगति को देखना चाहिए। इस प्रकार हमारी संगति ही हमारा परिचय देती है।

शंकराचार्य और मंडन मिश्र एवं मण्डन मिश्र के तोते

संगति से परिवर्तन – अधिकांशत: ऐसा देखा गया है कि ग्राम के सरल युवक नगर के महाविद्यालयों में पढ़ने आते हैं, उनमें कुछ सामान्य स्तर से उठकर बहुत निपुण विद्यार्थी बनकर उभरते हैं और भविष्य में सफल होते हैं जबकि कुछ शराबी और गुंडे बन जाते हैं। यदि हम इस तथ्य की गवेषणा करें, तो देखेंगे इसका प्रमुख कारण संगति थी। कुछ युवक अच्छी संगति में आकर पढ़ाई में दक्षता प्राप्त करते हैं। वे वरिष्ठ विद्यार्थियों की पढ़ाई, सोच और तैयारी से प्रभावित होकर मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। वे सीखते हैं कि किस प्रकार प्रतियोगी परिक्षाओं की तैयारी करनी चाहिए। इस प्रकार भविष्य में वे सफलता प्राप्त करते हैं। वहीं दूसरी ओर कुछ युवक बुरी संगति में पड़ जाते हैं। पहले-पहले तो उनके मित्र मुफ्त में सिगरेट पिलाते हैं, सिनेमा ले जाते हैं, मौज-मस्ती करते हैं। बाद में उसे इसकी लत लग जाती है और वह स्वयं इन सब पर पैसे और समय खर्च करने लग जाता है। यदि उसके पास आर्थिक क्षमता न हो, तो अपनी लत को पूरी करने के लिये चोरी आदि बुरे कार्य करने लग जाता है। इस प्रकार वह अपने समय और धन का अपव्यय करके अपने भविष्य को अन्धकारमय कर डालता है। जब उसे अपनी भूल का भान होता है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। कभी-कभी तो स्थिति इतनी भयावह हो जाती है कि उसे अपनी भूल की चेतना भी नहीं होती, पर जो लोग उसे देखते हैं, वे समझ जाते हैं कि वह अपना जीवन चौपट कर चुका है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द जी हमें उपदेश देते हुए कहते हैं, ''कुसंग छोड़ दो; क्योंकि पुराने घाव के चिह्न अभी भी तुममें बने हुए हैं, उन पर कुसंग की गर्मी लगने भर की देर है कि बस, वे फिर से ताजे हो उठेंगे। ठीक इसी प्रकार हम लोगों में जो उत्तम संस्कार हैं, वे भले ही अभी अव्यक्त हों, पर सत्संग से वे फिर जाग्रत, व्यक्त हो जाएँगे। संसार में सत्संग से पवित्र और कुछ भी नहीं है, क्योंकि सत्संग से ही शुभ संस्कार चित्तरूपी सरोवर की तली से ऊपरी सतह पर उठ आने के लिये उन्मुख होते हैं।''[५] इस प्रकार जैसी संगति वैसा परिवर्तन, इसलिए हमें अपनी संगति के प्रति सावधान रहना चाहिए।

कभी-कभी हम सोचते हैं कि यह जीवन तो विफल ही गया, हम कुछ कर न सके और न ही कुछ कर सकेंगे। परन्तु इतिहास की गोद में कुछ प्रेरणादायक प्रमाण भी हैं। जैसे रत्नाकर डाकू नारद का संग पाकर ऋषि बन गया, अंगुलिमाल बुद्ध का संग पाकर बौद्ध संत बन गया, उसी प्रकार हम भी सत्संग के प्रभाव से अपने जीवन को परिवर्तित कर सकते हैं। जैसा कि कहा गया है –

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परस कुधात सुहाई।।[६]

अर्थात् दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द जी हमें उपदेश देते हुए कहते हैं, ''बाल्यावस्था से ही किसी जाज्वल्यमान, उज्ज्वल चरित्रवान तपस्वी महापुरुष के सान्निध्य में रहना चाहिए, ताकि उच्चतम ज्ञान का जीवन्त आदर्श दृष्टि के समक्ष बना रहे।''[७]

आन्तरिक सत्संग – आन्तरिक सत्संग के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''साधुओं का एक क्षण

का भी सत्संग भवसागर पार होने के लिए नौकास्वरूप है। सत्संग की ऐसी जबरदस्त शक्ति है! बाह्य सत्संग की जैसी शक्ति बतलाई गई है, वैसी ही आन्तरिक सत्संग की भी है। इस ओंकार का बारम्बार जप करना और उसके अर्थ का मनन करना ही आन्तरिक सत्संग है। जप करो और उसके साथ उस शब्द के अर्थ का ध्यान करो। ऐसा करने से देखोगे, हृदय में ज्ञानालोक आएगा और आत्मा प्रकाशित हो जाएगी।''[८]

संगति के प्रति हमारा आग्रह आवश्यक है – अच्छी संगति के प्रति हमारा आग्रह होना अत्यन्त आवश्यक है। रामायण में एक विशिष्ट उदाहरण मिलता है, जहाँ विभीषण लंका के राजा रावण की कुनीतियों के कारण उसकी संगति छोड़कर सुनीतिवान वनवासी राम से मित्रता करते हैं तथा अपने कुल की रक्षा करते हैं। हमें भी सदैव अच्छी संगति का चयन करना चाहिए। जिस प्रकार मधुमक्खी सदैव फूलों पर ही बैठा करती है, फूलों का ही रस पीती है, वह कभी मल-मूत्र पर नहीं बैठती। उसी प्रकार हमें भी सदैव अच्छी संगति का चयन करना चाहिए। हमारा आग्रह सदैव अच्छी संगति की ओर होना चाहिए। यदि ऐसी स्थिति आए, जहाँ हमें अच्छी संगति ना मिले और बुरी संगति मिले, तो उसका त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि एक गधे मित्र से एक बुद्धिमान शत्रु, अच्छा होता है। ऐसी स्थिति में जहाँ हमें अच्छी संगति ना मिले, हम अच्छी पुस्तकों को अपना मित्र बना सकते हैं। आजकल सोशल मीडिया में कुछ ऐसे समूह होते हैं, जो अच्छी संगति दे सकते हैं। वहीं हमें ऐसे समूहों से बचना चाहिए जो सदैव सेल्फी खींचने में ही व्यस्त रहते हैं, अनावश्यक बातों में व्यस्त रहते हैं। हमें अपने जीवन मूल्यों पर आधारित संगति के प्रति आग्रही होना चाहिए।

संगति से समस्याओं का समाधान – कभी कभी हम द्वन्द्व में पड़ जाते हैं कि हम क्या करें और क्या नहीं। ऐसी स्थिति में हमारे सहायक मित्र ही हमारे विश्वासपात्र होते हैं और उनसे विचार-विमर्श करके ही हम अपना निर्णय ले पाते हैं। यदि हमारे मित्र अच्छे हुए, तो हम सही पथ पर चलेंगे और यदि वे बुरे हुए तो हम भी गलत रास्तों पर चलने लगेंगे। जिस प्रकार दीपक को प्रज्ज्वलित रखने के लिये निरन्तर तेल की आवश्यकता होती है, वैसी ही हमें हमारे जीवन को सद्गति देने के लिए अच्छी संगति की आवश्यकता होती है। कभी-कभी कुछ समस्याएँ अकेले ही नहीं निपटाई जा सकतीं। तब हमें सहयोग की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में अच्छी संगति उन समस्याओं के समाधान के लिए सहायक होती है।

संगति से संगठन की शक्ति – विवेक इंजीनियरिंग महाविद्यालय में प्रवेश लेता है। पर वहाँ जाकर वह रैगिंग का भयानक रूप देखता है। वह अपने सहपाठियों से इसका विरोध करने के लिए कहता है। वे उससे सहमत भी होते हैं, परन्तु वरिष्ठ छात्रों के दबाव में आकर वे रैगिंग देने लगते हैं। वह छात्रों को समझाता है कि अच्छी संगति का फल अच्छा ही होता है और बुरी संगति का फल बुरा ही होता है, अत: उन्हें रैगिंग का विरोध करके एक अच्छी संगति की परम्परा प्रारम्भ करनी चाहिए। पर विवेक अकेला पड़ जाता है। सब लोग उसे यह कहकर हतोत्साहित कर दिया करते थे कि ये सब पुस्तकीय बातें हैं, पर वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता। दूसरी ओर विवेक 'विवेकानन्द युवा महामंडल' का सदस्य था और वहाँ उसे उसके अच्छे कार्यों और संस्कारों को प्रोत्साहन दिया जाता था। वहाँ कई ऐसे छात्र थे, जो आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहते थे। इस संगठन के माध्यम से उसे अच्छी संगति और मार्गदर्शन मिलता रहता था, जिससे वह अपने महाविद्यालय में होने वाली समस्याओं से जूझ सकने की शक्ति पाता था। उसे अपनी पढ़ाई बिना किसी सहायता के अकेले ही करनी पड़ती थी। वहीं दूसरी ओर अन्य छात्र रैगिंग के कारण पढ़ाई करने में असमर्थ हो जाते थे। कुछ महीने बीतने के पश्चात् उसके समस्त सहपाठी धीरे-धीरे विवेक से मिलकर रैगिंग के विरोध में खड़े होते गये। वे सब अपनी पढ़ाई भी पूरी कर सके और महाविद्यालय में रैगिंग का अध्याय भी समाप्त हो गया। इस प्रकार यदि अच्छी संगति एक संगठन का रूप ले ले, तो बड़े से बड़ा कार्य बड़ी सरलता से किया जा सकता है। आज समाज में ऐसे विभिन्न संगठन कार्यरत हैं तथा हम अपने भावों के अनुसार उन संगठनों से युक्त होकर एक अच्छी संगति पा सकते हैं तथा जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

एक कहानी और उसकी प्रेरणा – एक मधुमक्खी की मित्रता एक गोबर के कीड़े के साथ थी और उसे सुगंध से भरे फूलों के देश में भ्रमण के लिए आमंत्रित किया करती थी। पर गोबर का कीड़ा हँसकर उसकी बात टाल दिया करता था। वह कहा करता था कि सुगन्ध से भरा क्या कोई देश

हो सकता है? ऐसा सम्भव नहीं है। पर मधुमक्खी सदैव उससे सुगन्ध के देश की बात कहती थी। अनेक दिन इसी प्रकार बीत गए। मधुमक्खी के बारम्बार कहने पर गोबर के कीड़े ने फूलों के देश में जाने की सोची। मधुमक्खी बहुत प्रसन्न हुई। मधुमक्खी एक दिन गोबर के कीड़े को लेकर फूलों के बगीचे में पहुँची। उसने गोबर के कीड़े को ले जाकर एक गुलाब फूल के अन्दर छोड़ दिया और अत्यन्त आनन्द के साथ वह बगीचे में घूमने लगी। कुछ समय पश्चात् वह वापस आकर मित्र से पूछती है कि उसे सुगन्ध कैसी लग रही है? तब मित्र ने कहा कि यहाँ भी वैसी ही दुर्गंध है। मधुमक्खी को बहुत आश्चर्य हुआ। वह उसके पास गई, तो सब समझ गई। गोबर का कीड़ा आने के समय अपने शरीर पर गोबर लपेटकर आया था। तब मधुमक्खी ने कहा मित्र तुम्हें सुगन्ध पाने के लिये गंगा स्नान करना होगा और वह उसे लेकर गंगा नदी में ले गई। गंगा में डूबते ही कीड़े के शरीर पर लिपटे हुए सारे गोबर धूल गए। तब मधुमक्खी ने अपने मित्र को एक कमल के फूल के अन्दर ले जाकर छोड़ दिया। अब कीड़े को सुन्दर सुरभि का आनन्द मिलने लगा। तब मधुमक्खी ने मित्र से कहा कि मित्र, अब तुम इस फूल के अन्दर स्थित मधु का पान करो। कीड़ा गोबर खा-खाकर अपने दाँत कमजोर कर बैठा था। उसे मधुपान के लिए बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ रहा था, पर मधुमक्खी उसे प्रोत्साहित किए जा रही थी। काफी प्रयास करने के बाद कीड़े ने एक छोटा-सा छेद कर दिया और कमल के भीतर से निकलने वाले मधु को पीकर आनन्द-विभोर हो गया। उसके आनन्द की सीमा नहीं रही और वह मूर्छित हो गया। आनन्द से वह बाह्य ज्ञान रहित हो गया। मधुमक्खी यह देखकर बहुत आनन्दित हुई और वह बगीचे में घूमने लगी। दिन व्यतीत हो गया और कमल की पंखुड़ियाँ बन्द हो गईं। प्रात: काल मन्दिर के पुजारी ने उस कमल को अनजाने में तोड़ दिया और भीतर न देखकर उस कमल को शिव के मस्तक पर अर्पित कर दिया। वह कीड़ा अब भी मूर्छित था। दोपहर के समय उसे होश आया, तब उसने देखा कि वह शिव के मस्तक पर सुशोभित है। यह देखकर वह मन-ही-मन अपने मित्र का स्मरण करके अत्यन्त आनन्दित हो रहा था। वह सोच रहा था कि वह कहाँ गोबर में पड़ा हुआ था और मित्र का संग पाकर आज वह भगवान शिव के मस्तक पर सुशोभित है। इस प्रकार संध्या हो गई और पुजारी ने कमल के फूल को उठाकर गंगा में विसर्जित कर दिया। दूसरी ओर मधुमक्खी अपने मित्र को खोज रही थी। वह चारों ओर पुकार-पुकार कर पूछ रही थी कि मित्र कहाँ हो, मित्र कहाँ हो? ऐसे समय में गोबर के कीड़े ने मधुमक्खी को पुकारा और बताया कि वह गंगा में बह रहे कमल में स्थित है। अब मधुमक्खी ने उससे वापस जाने की बात की। तब गोबर का कीड़ा बोला – नहीं मित्र! अब मैं वापस नहीं जाना चाहता। कहाँ मैं गोबर की दुर्गंध में पड़ा हुआ था और तुम्हारे संग में आकर मैं गंगा स्नान करके मधुपान कर सका और शिव के मस्तक पर अर्पित हुआ। आज मैं अनन्त समुद्र की यात्रा में जा रहा हूँ। अब मुझे तुम मत रोको। अब मैं वापस नहीं जाना चाहता और इस प्रकार गोबर का कीड़ा अपनी अनन्त यात्रा के लिए प्रस्थान कर गया।
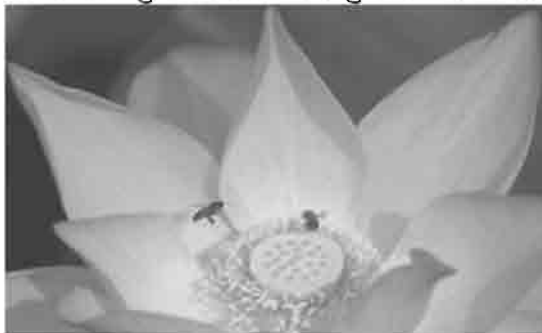
जिस प्रकार मधुमक्खी के बारम्बार फूलों के देश में सुगंध की बात को गोबर का कीड़ा स्वीकार नहीं करता था। उसी प्रकार जब हमें कोई साधु संग, सत्संग या अच्छी संगति मिले, तो वे सदैव हमारा सत् पथ का मार्गदर्शन करते हैं, परन्तु हम अपने संस्कारवश उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। परन्तु इस अच्छी संगति के बारम्बार मिलते रहने पर कभी हमें उस मार्ग पर चलने की इच्छा हो जाती है, जिस प्रकार गोबर के कीड़े को हुई थी। परन्तु फिर भी हम उस गोबर के कीड़े की भाँति अपने पुराने संस्कारों को अपने साथ रखकर उस मार्ग पर चलते हैं और हमें उस मार्ग में भी वैसी ही बुराइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु जिस प्रकार गोबर का कीड़ा गंगा नदी में स्नान करके पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार सत्संग के प्रभाव से हम भी गंगा स्नान की तरह पवित्र होते जाते हैं और उसके पश्चात् हम उस सत्संग का ठीक-ठीक मर्म समझ पाते हैं, जैसे गोबर के कीड़े ने कमल के फूल में जाकर समझा। हम अपने पुराने संस्कारों के कारण उस मार्ग को सरलता से प्राप्त नहीं कर सकते, जैसे गोबर का कीड़ा कमल में छिद्र करने में लगा था,

शेष भाग पृष्ठ ३८ पर

भजन एवं कविता

सरस्वती-स्तुतिः

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

शुभ्राम्बरां शुभ्रवर्णां सुजातां
हंसस्थितां शुभ्रमुखीं सुरम्याम्।
सत्त्वप्रधानां सुमतिप्रदात्रीं
सौन्दर्यमूर्तिं शरणं प्रपद्ये ।।१।।

श्वेतवस्त्रधारिणी, श्वेत रंग की, गौरमुखी, शोभनकुलोत्पन्न, सत्त्वगुण की प्रधानतावाली, सद्बुद्धि प्रदान करनेवाली, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति (सरस्वती) की मैं शरण लेता हूँ।

माल्यं जपन्तीं श्रुतिरत्नहस्तां
द्वाभ्यां कराभ्यां च गृहीतवीणाम्।
पद्मासनस्थां तु चतुर्भुजां तां
याचामि ज्ञानाय विमुक्तिहेतोः ।।२।।

जो कमल के आसन पर बैठी चार भुजाओं वाली देवी माला जपती रहती हैं, जिनके हाथ में वेदरूपी रत्न विद्यमान है, और अन्य दो हाथों में वीणा है, उनसे मैं मुक्ति के लिए ज्ञान की याचना करता हूँ।

नृत्यन्ति विद्यावनिता मुखाग्रे
यस्याः कृपायाः कविराजराज्ये।
ज्ञानेश्वरी सैव सरस्वती या
वाचस्पतिं मां विदधातु देवी ।।३।।

जिनकी कृपा से श्रेष्ठ कवियों के राज्य में मुखाग्र होकर विद्यारूपी ललनाएँ नृत्य करती रहती हैं, वही ज्ञान की अधीश्वरी देवी सरस्वती मुझे वाचस्पति बना दें।

मायाविमुक्तो भवितुं न शक्यो
यावन्न प्राप्नोति नरोऽत्र विद्याम्।
विद्याधिमाता क्रियते प्रसन्ना
प्रज्ञाघनं मां विदधातु देवी ।।४।।

माया से मुक्त होना तब तक संभव नहीं, जब तक मनुष्य इस जीवन में विद्या नहीं प्राप्त कर लेता। विद्या की अधिष्ठात्री माता को इसीलिए प्रसन्न कर रहा हूँ कि वे मुझे पूर्ण ज्ञानी बना दें।

ऐंबीजमन्त्रेण स्मरन्ति देवीं
भक्ता मुदैतां भुवनप्रसिद्धाम्।
वाग्रूपिणी श्रीः करुणावतीयं
मेधाविनं मां विदधातु देवी।।५।।

भक्तजन मुदित होकर सारे भुवनों में प्रसिद्ध इस देवी को 'ऐं' बीजाक्षर मन्त्र से स्मरण करते हैं। वाक्-स्वरूपिणी, करुणावती यह श्री देवी मुझे मेधावी बना दें।

माँ, कैसे मैं तुमको पाऊँ

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

मेरे जीवन के घन-तम में, दिव्य कान्ति की ज्योति जलाकर,
दुख-द्वंद्व मेरा सब हरके, नव आशा की किरण बिछाकर,
मेरे मन के अरमानों को, तुम ने सुन्दर रूप दिया है,
मेरे जीवन की सन्ध्या में, रोग-शोक सब दूर किया है।
माँ ! तव चरणों में मैं कैसे, अपना जीवन-अर्घ्य चढ़ाऊँ,
राग,द्वेष, मद, मोह मिटाकर, माँ ! कैसे मैं तुमको पाऊँ।
हे जगजननी, मुक्तिदायिनी, कृपा करो माँ शुभप्रदायिनी,
एक आस बस चाह तुम्हारी, इस जीवन में सदा रहे,
तव चरणों में निशदिन मेरा, ध्यान-ज्ञान सब अटल रहे।।

तेरे हाथों सौंप दिया ....

आनन्द तिवारी पौराणिक

तेरे हाथों सौंप दिया जीवन नौका, अब मुझे भला क्या भय ।
तू ही खेवनहार, तेरे हाथों में पतवार, मैं निश्चिन्त हुआ निर्भय ।।
चाहे भावसागर मार लगा, या नौका डूबा मझधार।
तूफान, झंझावात चले, या उठे तीव्रतम ज्वार ।।
तुम मेरे सर्वस्व प्रभु, हे रक्षक करतार !
मैंने तो अब सौंप दिया है, तुझको अपना भार ।।
चिन्ता नहीं हारूँ-जीतूँ, मिले पराजय या जय।
तू ही खेवनहार, तेरे हाथों में पतवार मैं निश्चिन्त हुआ निर्भय ।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (८७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२०-०१-१९६२

महाराज – गीता की संस्कृति हमारे देश से, समाज से जा चुकी है। १००० वर्षों से हमारा राष्ट्र के प्रति दायित्व नहीं रहा। धीरे-धीरे परिवार के प्रति दायित्व, यहाँ तक कि व्यक्तिगत दायित्व भी चला गया। जो अपने भीतर कोई सार्थक वस्तु नहीं पाते, वे सर्वदा कोई उत्तेजनापूर्ण कार्य करना चाहते हैं। क्रोधित होने पर मनुष्य का हित-अहित का बोध चला जाता है, तब वह चण्डाल हो जाता है। ठाकुर ने एक व्यक्ति के बारे में कहा था – "वह अभी चण्डाल हो गया है। उसका तुमने स्पर्श किया है, जाओ गंगाजल स्पर्श करके आओ।"

'**सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता:**' – जब तक अपना कैसे भला और कैसे बुरा होगा, यह समझने की क्षमता नहीं है, तब तक पुरस्कार का लोभ दिखाकर रुचि उत्पन्न करनी पड़ती है। फिर उस व्यक्ति के अपना अच्छा करने और अच्छा समझने की क्षमता होने पर भी प्रतिद्वन्द्वात्मक भाव नहीं रहना ही अच्छा है। इससे एक हीन भावना उत्पन्न होती है।

जो नए लोग साधु होना चाहते हैं, उनमें सर्वप्रथम आत्म-विचार चाहिए। जिनमें उत्कट भक्ति दिखाई पड़ती है, उन सभी ने पूर्व जन्म में तपस्या की है। साधारण व्यक्ति में यदि आत्म-विचार नहीं है, तो संन्यासी का विश्व-भ्रातृत्व का भाव ला पाना सम्भव नहीं है। आत्मविश्लेषण नहीं रहने पर बड़े-बड़े दिग्गजों का भी पतन हो जाता है।

२२-०१-१९६२

प्रश्न – ज्ञानयोग, राजयोग का मूल उद्देश्य क्या है?

महाराज – ज्ञानयोग है बौद्धिक और राजयोग की बातों का चिन्तन करने से मन एक विशिष्ट प्रदेश में विचरण करता है। चित्ताकाश, चिदाकाश की बात का चिन्तन करते-करते मन भी ऊँचाई पर रहता है। ज्ञानयोग में मन इस जगत को तोड़-मरोड़कर देखना चाहता है। वैष्णव लोग केवल भक्ति लेकर रहते हैं – केवल इष्टचिन्तन, परोपकार की कोई बात नहीं, केवल-अन्तर्मुखी। चैतन्यदेव के सभी शिष्य निष्ठावान थे। हमारे स्वामीजी ने इन सबके साथ शिवभाव से परोपकार को दिया है। इसका कारण यह है कि प्रथमत: हमारा चित्त शुद्ध नहीं है, देश में घोर तमोगुण है, इसके अलावा, वर्तमान समय में सुदूर प्रसारी सम्पर्क के युग में कोई कट्टरता नहीं चल पाएगी। रेडियो, समाचार पत्र आदि सब हो गए हैं। एक बात ध्यान से सुनो – पूजा, जप, सब कुछ बहिरंग है, ध्यान से ही सच्ची साधना आरम्भ होती है। किन्तु मन शुद्ध नहीं रहने पर अधिक ध्यान करना अच्छा नहीं है।

स्वामी प्रेमेशानन्द

प्रश्न : सद्गृहस्थ के घर का अन्न न होने पर यदि उससे पाप स्पर्श करता है, तो कौन-सा शुद्ध अन्न है और कौन-सा अशुद्ध अन्न है, हम लोग इसे कैसे समझेंगे?

महाराज :- 'यावदर्थ: परिग्रह:'। किन्तु सद्गृहस्थ में परिग्रही वृत्ति नहीं होने पर पाप स्पर्श करता है। एक ब्रह्मचारी ने रात में श्रीकृष्ण मन्दिर से सोने की बंशी चुरा ली। सुबह होने पर उसकी पूर्वस्मृति जाग्रत हो गयी। उसे पश्चात्ताप हुआ। उसने बंशी लौटा दी। पता करने पर ज्ञात हुआ कि एक गृहस्थ यजमानी ब्राह्मण ने दुष्ट व्यक्ति के श्राद्ध का अन्न ब्रह्मचारी को खिला दिया था।

इसीलिए स्वामीजी ने इस बार हम लोगों के लिए नए प्रकार के परिग्रह की व्यवस्था की है – सेवा करके खाना, वह भी परोपकार के भाव से करना। पहले हमलोग राहत-

कार्य करने जाते, किन्तु खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं थी। बाबा (स्वामी अखण्डानन्द जी) रामकृष्ण मिशन के पैसे को अपने खाने-पीने में खर्च नहीं करते थे। किन्तु राजा महाराज उनसे कहते, "तुम काम करोगे, तो भोजन कहाँ से आएगा? तुम भोजन राहत-विभाग से ही लेना।"

१८.०३.१९६२

महाराज : मुर्शिदाबाद में यदि भारतीय संस्कृति है, तो वे हैं किरीटेश्वरी देवी। एकावन शक्तिपीठों में से एक शक्तिपीठ, राजा रामकृष्ण की साधनपीठ, विष्णुपुर की कालीबाड़ी, कांचनपुर के शिव, जिनका चित्र पंजिका में भी रहता है। हजारदुआरी (सिराजुद्दौला का महल-मुर्शिदाबाद में) तो भोगियों का स्थान है। पलासी तो भारत का कलंक-स्थल है। बच्चों को ऐसे स्थानों पर भेजना, जहाँ उन्हें भारतीय संस्कृति का ज्ञान हो। वे स्थान कौन-कहाँ और क्यों है, इसे नहीं बताने से बच्चों की उसमें रुचि नहीं होती। इनके अतिरिक्त, प्राचीन भारत में जो धर्म और नैतिक जीवन की कथा है, वह भी इसी प्रकार फैलेगी। कथा-कहानी हो सकती है, किन्तु उसके साथ जो विचार और पवित्रता होती है, वह तो कोई कहानी या रूपक नहीं है।

मुर्शिदाबाद की बातें राखालदास बन्द्योपाध्याय ने लिखी हैं, किन्तु उसे कौन पढ़ेगा? वह तो किसी अंग्रेजी पढ़े-लिखे साहब द्वारा लिखित नहीं है, वह तो बांग्ला भाषा में लिखित है।

प्रश्न – सूक्ष्म दृश्य वस्तु क्या है?

महाराज – सूक्ष्म दृश्य वस्तु – जैसे नारद का आख्यान है – युवती पानी में बही जा रही है, उसे देखकर नारद के मन में दया का उद्रेक हुआ। सतोगुण से रजोगुण आया, उसके बाद तमोगुण आने से नारद का बन्धन हुआ। मुमुक्षु सब कुछ त्याग करते हुए आगे बढ़ता चला जाएगा। संन्यासी की नारियों के प्रति दया मरणात्मक है। अत्यन्त कठिनाई में पड़ने पर सम्भव हो तो निकटवर्ती ग्राम में सूचना देकर चले जाओ। बहुत-से लोग हैं, जो दया का दिखावा करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। एक ने हमलोगों से कहा था – तुम हस्ताक्षर करो, झूठ के कारण जो पाप है, वह मेरा होगा। देखो, कैसी भयानक बात है! अपने को क्या सोच रहा है! कितनी अहंकारपूर्ण बात है! किन्तु कर्मण्य कपटी, धूर्तों की अपेक्षा ये लोग अच्छे हैं। अकर्मण्य कपटी, धूर्त तो परोपकारी कार्यों के प्रति उदासीन रहते हैं, किन्तु अपनी रंचमात्र क्षति होने से ही, थोड़ा-सा उनके शरीर को खुजलाने से ही वे लोग बेचैन हो जाते हैं!

२८-०३-१९६२

गीता के तृतीय अध्याय का पाठ हो रहा है –

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।

महाराज – यह ठीक-ठीक रामकृष्ण मिशन की बात है। देश में अध्यात्म साधना लुप्त हो गई है, ध्यान-जप भी सम्भव नहीं है। इसीलिए कर्म द्वारा चित्तशुद्धि करनी होगी, तभी ध्यान-जप सम्भव होगा।

सुनो, एक घटना याद आ रही है। एक बार मैं थोड़ा घी लेकर उद्‌बोधन में गया। वह घी सुरेन महाराज ने दिया था। गोलाप माँ ने वह घी लेकर कहा, "क्या यह घी अच्छा है?" तुरन्त ही शरत् महाराज बोले, "सुरेन ने दिया है – भक्त की दी हुई वस्तु खराब क्यों होगी?"

ऋषिकेश में है – काम-काज छोड़कर अकर्मण्य, आलसी होकर पड़ा है, गुमसुम होकर बैठा रहता है, प्रति महीने भक्त पैसा भेज दे रहे हैं, बहुत प्रसन्न है। मैं एक व्यक्ति को बचपन से ही जानता हूँ, वह बड़ा ही चंचल मन का है। वह ध्यान में क्या बैठेगा! उसे मैं एक श्लोक भी नहीं पढ़ा सका, उसने कोई आन्तरिक जीवन नहीं देखा। वह गीता पढ़ता था, वह गीता-पाठ कैसा! – भाष्य-पाठ हो रहा है। भाष्य का अर्थ सुनाया जा रहा है और वह गुमसुम बैठकर केवल सुनता है। इसके अलावा, ऋषिकेश का परिवेश इस समय बड़ा ही भ्रष्ट है! केवल तमोगुण और ध्यान-जप का पाखण्ड है। इसकी अपेक्षा तो साधु होकर किसी गाँव में स्वास्थ्य की बातें बताते हुए भ्रमण करना ही अच्छा है, जिससे देश के लोगों का स्वास्थ्य अच्छा हो। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १३ का शेष भाग

गुप्त के बगीचे में जा पहुँचे। उद्यान के मालियों ने कहा, "यदि आप लोग 'सातपुकुर' के उद्यान में जाएँ, तो वहाँ मिल सकेगा।"

घुघुडांगा स्टेशन की ओर जानेवाली बड़ी सड़क के उत्तरी किनारे पर सातपुकुर का उद्यान स्थित है। कलकत्ते के निकट के किसी भी अन्य उद्यान में उस फूल का पेड़ नहीं दिखा। मैं अकेले ही सातपुकुर के बगीचे में गया। ***(क्रमशः)***

गीता तत्त्व चिन्तन (१)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर,२०१६ से नवम्बर २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

नवम अध्याय की प्रस्तावित भूमिका

पूर्व अध्याय में मनुष्य मृत्यु के समय भगवान को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, इसका उत्तर भगवान श्रीकृष्ण ने दिया। बाकी छह प्रश्नों के उत्तर उन्होंने बहुत जल्दी प्रदान कर दिये। जो सातवाँ प्रश्न था – **प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽस्मि नियतात्मभिः।** उसके उत्तर में सारा अध्याय हम देखते हैं। अन्ततः भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि मैं किस प्रकार से प्राप्त होता हूँ। दो गतियों का वर्णन किया। एक गति वह है, जहाँ मनुष्य जाने के बाद फिर लौट आता है और दूसरी गति वह है, जिससे जाने पर जीव फिर लौटकर नहीं आता। वह ब्रह्मस्वरूपता को प्राप्त हो जाता है। इन दो गतियों को देवयान और पितृयान कहा गया है या उत्तरायण और दक्षिणायन का रास्ता कहा गया है। जिस ढंग से यहाँ पर गीता में कहा गया है, इस विषय की धारणा करना कठिन है। उत्तरायण और दक्षिणायन का मार्ग कैसा है? देवयान क्या है और पितृयान क्या है? किस प्रकार देवयान से जाने पर मनुष्य लौट कर नहीं आता? कैसे पितृयान से जाने पर वह लौटकर आ जाता है? कैसे ये भिन्न-भिन्न गोलक और प्रभाव क्षेत्र प्राप्त होते हैं। इस पर विस्तार से चर्चा हुई थी। भगवान कृष्ण ने यह सब बतला करके अन्त में कहा – अर्जुन, मुझे पा लेने पर यज्ञ, तप और दानादि करने का जो भी फल है, वह तो उसे मिल ही जाता है और वह सनातन परम पद को प्राप्त हो जाता है। इसका आशय यह है कि तू मुझे ही पाने की चेष्टा कर। अर्जुन के मन में प्रश्न उठ सकता है कि यह जो मेरे सामने श्रीकृष्ण खड़े हैं। कहते हैं कि यदि तू मुझे पा लेगा तो, यज्ञ, तप और दान का फल तो तुझे मिल ही जाएगा, परन्तु तू परम सनातन पद को भी प्राप्त हो जाएगा – **'अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा, योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्'** तो ये कृष्ण कौन हैं? इन्हें जानने का क्या तात्पर्य है? वैसे तो जो कृष्ण दिखाई दे रहे हैं, वे देवकी-वसुदेव के पुत्र हैं। उनके अपने फुफेरा भाई हैं। कुन्ती श्रीकृष्ण की बुआ हैं। श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष रूप तो यह दिखाई देता है।

अब कृष्ण क्या चाहते हैं? मैं उनके किस रूप या स्वरूप को जानूँ, जिसको जानकर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता और वह परम सत्य प्राप्त हो जाता है, यह प्रश्न अर्जुन के मन में उठा होगा। उसका समाधान करने के लिए आगे जो भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, वह नवम अध्याय है। इस अध्याय का नाम है – **राजविद्याराजगुह्ययोग।**

यह नाम ऐसा क्यों है? क्योंकि इस विद्या को भगवान कृष्ण राजविद्या कहते हैं, राजगुह्य कहते हैं। इस विद्या के माध्यम से उस परम तत्त्व के साथ युक्त होना, इस अध्याय में बताया गया है। इसीलिए इस अध्याय को राजविद्याराजगुह्ययोग कहा गया है। यह बहुत सुन्दर अध्याय है। गीता के बीचोंबीच में यह नवम अध्याय है। गीता महाभारत के बीच में प्राप्त होती है। महाभारत गीता पर विस्तृत टीका है। गीता में कहानी, कथा या उपाख्यान नहीं है। गीता में जिन सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, उन सिद्धान्तों को समझाने के लिए कहानियाँ लिखी गईं, आख्यायिकाएँ लिखी गईं, उसको हम महाभारत के नाम से जानते हैं। गीता के सिद्धान्तों का विशदीकरण महाभारत की आख्यायिकाओं में किया गया है। वैसे ही हम कह सकते हैं कि गीता में जो भी तथ्य है, वह नवम अध्याय के माध्यम से सार-संक्षेप रूप में हमारे समक्ष आता है। यह नवाँ अध्याय भक्तों को, ज्ञानियों को समान रूप से प्रिय रहा है। इसमें निर्गुण-निराकार स्वरूप, सगुण-निराकार स्वरूप और सगुण-साकार स्वरूप का वर्णन भी है। सत्य के ये तीन पक्ष दिखाई देते हैं। एक तो निर्गुण-निराकार, दूसरा सगुण-निराकार और तीसरा सगुण-साकार।

निर्गुण-निराकार में कोई आकार नहीं। वह ब्रह्म की अवस्था है, निर्विकल्प समाधि की अवस्था है। सगुण-निराकार में उस सत्य का गुण तो है, पर कोई आकार नहीं है। गुण कैसे है? जैसे हम उसे परम पिता परमेश्वर, दयालु, कृपासागर कहते हैं। ईश्वर का वर्णन गुणों के माध्यम से किया जाता है। पर ईश्वर का कोई आकार नहीं है। जैसाकि आर्यसमाजी मानते हैं। आर्यसमाजियों का ईश्वर निराकार है, पर सगुण है। पर सनातन धर्म में मूर्तिपूजा है, इसकी साकार उपासना है। ईश्वर का तीसरा पक्ष सगुण-साकार का है। यहाँ गुण भी है और आकार भी है। भक्तों के लिए वह ईश्वर आकार लेता है। जैसाकि हम श्रीरामचरितमानस में पढ़ते हैं। जब भगवान नारायण मनु पर प्रसन्न होते हैं, तो कहते हैं मनु - **माँगु माँगु भई नभ बानी**। तुम वरदान माँगो, हम तुम पर प्रसन्न हैं। मनु महाराज माँगते हैं। वे कहते हैं – महाराज, मैंने एक बात सुनी है। प्रभु ने पूछा कि तुमने कौन-सी बात सुनी है? मनु कहते हैं –

अगुन अखंड अनंत अनादी।
जेहि चिंतहिं परमारथबादी।।
नेति नेति जेहि बेद निरूपा।
निजानंद निरुपाधि अनूपा।। १/१४३/४-५

यह पूरा निर्गुण-निराकार का वर्णन है। इसके बाद क्या कहते हैं?

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीलातनु गहई।। १/१४३/७

शास्त्रों में हमने पढ़ा है महाराज कि ऐसे जो प्रभु हैं, वे भक्तों के लिए लीला शरीर धारण करते हैं। ये हो गया सगुण-साकार।

जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा।
तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।। १/१४३/८

यदि यह बात सत्य हो, तो आप हमारी इच्छा की पूर्ति कीजिए। क्या इच्छा है तुम्हारी? मनु कहते हैं, हम आपको देखना चाहते हैं। भगवान ने कहा कि मेरा अपना कोई बना बनाया रूप तो है नहीं! मनु, मेरे पास कोई साँचा नहीं है। भक्त मुझे साँचा देता है और कहता है कि इसमें अपने आपको ढाल के आओ। तुम जिस रूप में मुझे देखना चाहते हो, मुझे साँचा दे दो। मैं उस साँचे में अपने को ढाल कर तुम्हारे सामने आ जाऊँगा। मनु ने कहा, ठीक है, महाराज। आप साँचा ही माँगते हैं, तो लीजिए, यह साँचा मैं आपको देता हूँ। मनु ने साँचा दिया। क्या साँचा दिया?

जो सरूप बस सिव मन माहीं।
जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुसुंडी मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन।। १/१४५/४-६

मनु महाराज ने यह साँचा दे दिया। उन्होंने कहा कि आपका जो स्वरूप शिवजी के हृदय में बसता है। आपके जिस स्वरूप का ध्यान शिवजी करते हैं और आपका जो रूप कागभुशुण्डी के मन-मानस का हंस है, हम उसी रूप में आपको देखना चाहते हैं। जिसकी प्रशंसा सगुण और निर्गुण कहकर की गई है। अब एक ही साथ भगवान सगुण और निर्गुण कैसे हों? यही भक्त की चतुराई है, मनु महाराज की चतुराई है। कहते हैं, मैंने आपको साँचा दिया क्योंकि आपने साँचा माँगा था। तो आपका जो स्वरूप भगवान शिव के हृदय में है, जिसका वे ध्यान करते हैं और आपका जो रूप कागभुशुण्डी के मन-मानस का हंस है। हम उसी रूप को देखना चाहते हैं।

स्वरूप का ध्यान किया जाता है और रूप को देखा जाता है। यहाँ दोनों बातें मनु महाराज ने कह दीं। वेदों ने जिसकी प्रशंसा सगुण और निर्गुण कहकर की है। प्रभु ने देखा भक्त चतुर है। इसीलिए वे भी चतुराई करते हैं। वे प्रकट होते हैं, किन्तु उनका रूप क्या है?

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम। १/१४६/०

यह उनका स्वरूप है। प्रसंग बहुत विलक्षण है। लम्बी व्याख्या की अपेक्षा रखता है। पर हम आपके समक्ष नवम अध्याय की प्रस्तावित भूमिका रखना चाहते हैं। नील सरोरुह माने नीला कमल, नीलमणि अर्थात् नीले रंग का मणि और नील नीरधर स्याम माने श्यामल वर्ण के मेघ। जैसे ये बादल दिखाई देते हैं। जब प्रभु प्रकट हुए, तो उनका वर्ण कैसा था? नील कमल के समान, नील मणि के समान, और नील मेघ के समान। ये तीन नील यहाँ पर हैं। आपके समक्ष हमने कहा था – निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार। ये तीनों उपरोक्त तीन उपमाओं के द्वारा वर्णित होते हैं।

ऐसा विलक्षण यह नवाँ अध्याय है। भक्तों और ज्ञानियों को बहुत प्रिय है। कहा जाता है कि ज्ञानदेव महाराज जब

शेष भाग पृष्ठ ३६ पर

मैं विश्वासघात नहीं कर सकता

स्वामी पद्माक्षानन्द

सन् १८५८ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय की बात है। हैदराबाद के समीप जेरापुर नाम की एक छोटी-सी रियासत थी। वहाँ का राजा बहुत कम उम्र का था। वह क्रान्तिकारियों से मिलकर देश को आजाद कराने का प्रयास कर रहा था। उसने अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिये अरब और रोहिला-पठानों की एक फौज तैयार की थी।

जेरापुर का राजा १८५७ ई. की फरवरी माह में हैदराबाद आया था। इसकी सूचना मिलते ही निजाम के स्वामिभक्त वजीर साजारजंग ने तुरन्त उसको गिरफ्तार करके अँग्रेजों को सौंप दिया।

राजा का कर्नल मेटोज टेलर नामक एक अँग्रेज अधिकारी के साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध था। राजा उन्हें 'अप्पा' कहकर बुलाते थे। मेटोज टेलर राजा से मिलने जेल में गया। टेलर ने राजा से अन्य क्रान्तिकारियों के नाम जानना चाहा। राजा ने गर्व से उत्तर दिया – "नहीं अप्पा! मैं उनके नाम कभी नहीं बताउँगा। आप ऐसा मत सोचिएगा कि मैं अपने प्राणों की भीख मागूँगा। अप्पा! जैसे मैं दूसरे की दया पर कायर के समान जीना नहीं चाहता, वैसे ही मैं अपने देशबन्धुओं के नाम भी प्रकट नहीं कर सकता।"

कर्नल मेटोज एक अन्य दिन फिर राजा के पास गये। उन्होंने बालक राजा से कहा – "तुम यदि दूसरों के नाम बता दोगे, तो तुम्हें क्षमा कर दिया जायेगा।"

राजा ने उत्तर दिया – "अप्पा साहेब! अपने देश के लिए जब मैं मृत्यु के मुख में जाने की तैयारी कर रहा हूँ, तब क्या मैं विश्वासघात करके अपने देशवासियों के नाम आपको बतला दूँ? नहीं, नहीं, तोप या कालेपानी की सजा – ये मेरे लिए इतने भयंकर नहीं हैं, जितना भयंकर विश्वासघात करना है!"

टेलर ने राजा से कहा – 'तुमको प्राणदण्ड की सजा दी जायेगी।'

राजा ने उत्तर दिया – 'अप्पा! मेरी एक ही प्रार्थना है, मुझे फाँसी पर मत चढ़ाइयेगा। मैं चोर नहीं हूँ। मुझे तोप के मुँह के सामने रखकर उड़ा दीजिये। फिर देखियेगा कि मैं कितनी शान्ति से तोप के सामने खड़ा रहता हूँ।

कर्नल टेलर के कहने से बालक राजा को प्राणदण्ड के बदले कालेपानी की सजा दी गयी।

जब राजा को कालेपानी के लिए भेजा जा रहा था, तब राजा ने हँसी-हँसी में ही अपने अँग्रेज पहरेदार की पिस्तौल ले ली और अवसर देखकर अपने ऊपर गोली दाग दी।

इसके पहले बालक राजा ने एक बार कहा था कि 'मैं कालेपानी की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसन्द करता हूँ। कैद और कालेपानी को तो मेरी प्रजा का एक तुच्छ-से-तुच्छ व्यक्ति भी पसन्द नहीं करेगा, फिर मैं तो राजा हूँ।'

इस बालक राजा के समान हमें भी किसी भी प्रकार के विश्वासघात रूपी कलंक से बचना चाहिए। ○○○

पृष्ठ ११ का शेष भाग

तीव्र वैराग्य के कारण स्वामीजी का हृदय भ्रमणकाल में अधिक विशाल हो गया था। अपने गुरु से उन्होंने जो आध्यात्मिक ज्ञान सीखा था, उसकी अग्नि-परीक्षा इस परिव्रजन-काल में हुई। अनेक प्रसंगों में उन्हें विविध प्रकार के प्रलोभनों का सामना करना पड़ा! उन्हें हमेशा ही भूखा रहना पड़ता था। कभी वे इतने बीमार पड़ गये कि मृत्यु ही हो जाती। भ्रमणकाल में उनका स्वाभिमान, जातिभेद की भावना, अपने गुरु-भाइयों और अन्यों के प्रति कर्त्तव्य, ध्यानमग्न रहने की इच्छा, बौद्धिक शक्तियाँ, इन सबकी अग्निपरीक्षा हुई। आत्यन्तिक तपस्या के इन वर्षों में प्राप्त प्रत्यक्ष अनुभवों ने उनके त्याग-वैराग्य को अधिक दृढ़ किया। उनके हृदय को स्पर्श कर सहानुभूति और संवेदनशीलता को अधिक गहरा किया। केवल बौद्धिक ज्ञान से यह कभी नहीं होता। उन्होंने बाद में मेरी हेल को लिखा, "अनुभव हमारा शिक्षक है। वह हमारी आँखें खोल देता है।" मानवात्मा के प्रेरक, जाग्रतकर्ता स्वामीजी कहते हैं, "उठो! उठो! हे महान् आत्माओ! विश्व दुखों से जल रहा है! क्या तुम सो सकते हो?" **(क्रमशः)**
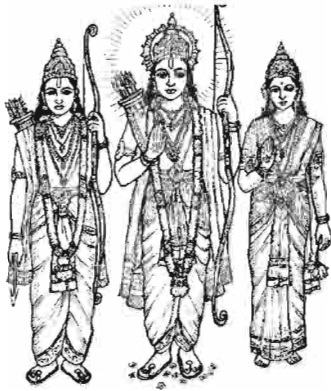
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (८/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

हिरण्यकश्यप क्या है? यह कथा सतयुग की है, पर यह हिरण्यकश्यप तो केवल सतयुग में ही नहीं था, यह तो आज भी है। 'दनुजेसक्रोध'। हिरण्यकश्यप कौन है? हम लोगों को क्रोध आ जाता है, तो समझते हैं कि अरे, वह तो साधारण बात है। कई लोग यह मानकर चलते हैं कि काम बहुत बुरा है और क्रोध उतना बुरा नहीं है। यह भ्रम बिलकुल नहीं पालना चाहिए।

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
३/३८/क

इन तीनों में से कोई किसी से कम नहीं है। समाज में किसी विकार को कम और किसी विकार को अधिक माना जाय, पर शास्त्र तो तीनों को एक ही कोटि में मानते हैं। क्रोध की पराकाष्ठा अगर किसी के चरित्र में दिखाई देती है, तो वह है हिरण्यकश्यप। क्या? इतना क्रोध कि क्रोध में थाली पटकनेवाले, बर्तन तोड़ देनेवाले तो घर-घर में मिल जाते होंगे, पर क्रोध में कोई अपने ही बेटे को मार डालने के लिए प्रस्तुत हो जाये, उसमें कितना भीषण क्रोध रहा होगा? और यह क्रोध क्या है?

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
७/१११/ख

यह क्रोध द्वैत वृत्ति है। अन्तर यही है, प्रह्लाद में और हिरण्यकश्यप में। प्रह्लाद की अद्वैत वृत्ति है, उन्हें सर्वत्र भगवान दिखाई देते हैं। अगर यही अद्वैत वृत्ति कि सबमें भगवान हैं, हिरण्यकश्यप को दिखा देने लगे, तब तो वह शान्त हो जायेगा। रामायण में लिखा हुआ है, कागभुशुण्डिजी को क्रोध क्यों नहीं आया। बोले –

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।।
७/११२/ख

प्रह्लाद और हिरण्यकश्यप में यही अन्तर है। प्रह्लाद को खम्बे में बाँधकर जब हिरण्यकश्यप पूछता है कि तेरा ईश्वर कहाँ है? तो वे यही कहते हैं –

पितु बावरो तू कछु जानैं नहीं,
प्रभु मेरो सबै थल में बिहरै।
अवनी में अकाश पतालहु में ....

और साथ-साथ कह दिया कि वह केवल मुझमें ही नहीं, वह तो – **महँ मोह महँ तेज भरै।** वह आपमें भी है। बस अन्तर यही है कि वह मुझे दिखाई दे रहा है और आपके हृदय में बैठे हुए होने पर भी आपको दिखाई नहीं दे रहा है। मानो यह द्वैत बुद्धि जब उदित होती है, तो व्यक्ति उस सीमा तक पहुँच जाता है, जहाँ वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्तु को भी नष्ट करने पर तुल जाता है। इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं कि हिरण्यकश्यप के रूप में क्रोध और दुःशासन के रूप में काम है। हम पढ़ते हैं कि दुःशासन बड़ा अत्याचारी था। उसने भरी सभा में द्रौपदी को नग्न करने की चेष्टा की। पर विचार करके देखिए, यह कौन-सी वृत्ति है? –

लोभ-ग्राह, दनुजेस-क्रोध, कुरुराज-बंधु खल मार।
विनयपत्रिका /९३/७

यह काम ही दुःशासन है। नग्नता काम को अत्यन्त प्रिय है और उस नग्नता की पराकाष्ठा तब है कि अपनी पूज्य, वन्दनीया को भी जब वह नग्न करने की स्थिति में पहुँच जाता है। पर भक्त यही कहता है कि प्रभु जैसे आपने अवतार लेकर इनका विनाश किया, इसी प्रकार से मेरे जीवन में भी ये विद्यमान हैं। आप कृपा करके इनका विनाश कीजिए। तो सत्संग एक स्वाभाविक परिणाम होता है। व्यक्ति जब अपने आपमें रोग देखता है, तो उसे दुःख होता है, पीड़ा होती है, पर विशेषता यह है कि व्यक्ति को दोष-दर्शन करना चाहिए कि नहीं? इसका अर्थ यह है कि

अगर दोष दर्शन इस सीमा तक हो जाये कि केवल दोष का ही चिन्तन हो, तो यह ठीक नहीं है। मान लीजिए किसी व्यक्ति को रोग है और उसे पता ही नहीं कि उसे रोग है, वह रोग पर ध्यान ही नहीं देता, तो यह तो कोई बड़ी ऊँची स्थिति नहीं है। फिर तो रोग भीतर फैलता जायेगा और अन्त में वह व्यक्ति को इस स्थिति में पहुँचा देगा, जब वह रोग असाध्य हो जायेगा, चिकित्सा से भी ठीक नहीं हो सकेगा। तो रोग का जानना स्वयं अपने आप में गुण है। लेकिन अगर केवल रोग का ज्ञान होने पर रोग का ही चिन्तन होने लगे, यह भी बड़ी भयानक स्थिति है। हर क्षण अगर यही याद करता रहे कि मुझ में यह दोष है, यह दोष है, तो हर क्षण वह रोग का ही चिन्तन करेगा, हर क्षण मृत्यु के भय से आतंकित रहेगा। शरणागति माने? अपने दोष का चिन्तन करने के बाद जो शरणागत है, उसके जीवन में निराशा का कोई स्थान नहीं है। क्यों? क्योंकि जब वह अपना दोष देखता है, तो भगवान के गुणों की स्मृति हो आती है उसे। श्रीभरत की शरणागति में भी यही सूत्र आता है –

जद्यपि मैं अनभल अपराधी।
भै मोहि कारज सकल उपाधी।।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी।
छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी।। २/१८२/३-४

यद्यपि मुझमें ये दोष हैं, मेरे कारण अनर्थ हुआ, पर प्रभु तो शरणागत की रक्षा करते हैं, इसलिए मेरे अपराधों को भी क्षमा करेंगे। यह जो सुदृढ़ विश्वास, आस्था है, बस दु:ख के बाद भगवान के गुण की, भगवान के शील की, उनके स्वभाव की, यह जो कथा में चर्चा की जाती है, उसका अभिप्राय है कि यदि व्यक्ति उन गुणों का चिन्तन करता हुआ भगवान के चरणों की ओर बढ़ता जाये, तो वह शरणागति की स्थिति में पहुँच जाता है। यही स्थिति विभीषण की है। दुख हुआ, व्याकुलता हुई और सत्संग के प्रभाव से चले, पर दोष-चिन्तन वहीं छोड़ आए। मान लीजिए छाती पर रावण का प्रहार हुआ और रास्ते भर अगर वह यही चिन्तन करते रहते कि वह कितना दुष्ट है, मैं कितनी अच्छी बातें कह रहा था, पर उसने मेरे साथ इतना दुर्व्यव्यहार किया, तो कितनी विचित्र स्थिति होती! पर नहीं, उन्हें स्मृति हो आई भगवान के चरणों की और भगवान के चरणों की जब स्मृति हुई, तो उनके मन में छह भक्तों की स्मृति आई। आइए, उसमें जो निहित संकेत है, उसे हृदयंगम करने की चेष्टा करें। सबसे पहले उनके अन्त:करण में अहल्या की स्मृति हो आई।

जे पद परसि तरी रिषिनारी। ५/४१/६

कुछ विचित्र-सी बात है। भरतजी की स्मृति सबसे अन्त में और अहल्या का सबसे पहले। यह कौन-सा क्रम है? जो सर्वोच्च है, उसको सबसे अन्त में। इसका अभिप्राय क्या है? यही तो शरणागत भक्तों की अपनी एक धारणा होती है। आप लोगों में से जिन्होंने नाम रामायण पढ़ी होगी, नाम रामायण का अर्थ है कि गोस्वामीजी ने कहा कि जैसे भगवान राम ने अवतार लेकर विविध लीलाएँ कीं, उसी प्रकार से भगवान के नाम का भी अगर कोई जप करे, तो लीला में घटनेवाली सारी घटनाएँ उनके हृदय में भी घटती हैं। नाम जप के विषय में कई साधक प्रश्न करते हैं। कई लोग पूछते हैं कि जप में प्रगति हो रही है कि नहीं? इसको हम कैसे जाने? इसका उत्तर यही है कि जैसे भगवान अवतार लेते हैं, तो धीरे-धीरे उनके चरित्र में, उनकी लीलाएँ सम्पन्न होती हैं। नाम जप करते हुए अगर व्यक्ति को यह अनुभव होने लगे कि हाँ, अब यह बालकाण्ड है, यह अयोध्याकाण्ड है, यह अरण्यकाण्ड है, यह किष्किंधाकाण्ड, लंकाकाण्ड है, काण्ड सभी आवेंगे, यह न समझ लीजिएगा कि बढ़िया-बढ़िया काण्ड ही आवेंगे। वे सब जप करनेवाले के जीवन में भी आवेंगे और तब कहीं उत्तरकाण्ड आवेगा और गोस्वामीजी ने बताया कि कैसे वह नाम जप करनेवाले को अनुभव होता है।

उसमें विचित्रता यह है कि जैसे विभीषण को सबसे पहले अहल्या का स्मरण आया। तुलसीदासजी ने भी अपने नाम रामायण का जो श्रीगणेश किया है, वह अयोध्या से नहीं किया है, वह अहल्या के उद्धार से ही किया। मुझे स्मरण नहीं है कि यहाँ नाम रामायण की कथा हुई कि नहीं। छब्बीस, सत्ताईस वर्षों में कितने प्रसंग हो चुके, यह तो मुझे याद रहने से रहे। यद्यपि कभी-कभी यह देखकर विलक्षण

विचित्रता की भी अनुभूति होती है। एक सज्जन बड़े स्नेह से मुझे कल ले गये। उन्होंने मुझसे पूछा कि इसके पहले आप कभी रायपुर आए हैं क्या? मैं सुनकर बड़ा चकित था। वे मुझे अपने घर ले जा रहे थे। वे धार्मिक व्यक्ति थे। उन्हें यह पता नहीं था कि इसके पहले भी मेरा यहाँ आना हुआ है। भगवान के मंगलमय नाम की कथा यहाँ सम्भव हुई हो, न हुई हो, ध्यान में तो नहीं आता। तो उसमें नाम रामायण का श्रीगणेश गोस्वामीजी करते हैं, यही विभीषणजी चिन्तन कर रहे हैं –

जे पद परसि तरी रिषि नारी।

और वहाँ तुलसीदासजी प्रारम्भ करते हैं –

राम एक तापस तिय तारी। १/२३/३

अब यहाँ पर गोस्वामीजी और भक्त विभीषणजी की भावना में एकसूत्रता है। इसके पीछे एक रहस्य है। कोई भी पढ़नेवाला कहेगा कि जब आप पूरी रामायण का वर्णन कर रहे हैं, तो आप वहाँ से प्रारम्भ कीजिए! जहाँ से भगवान का अवतार हुआ। आप प्रारम्भ अयोध्या से कीजिए। इसके दो सूत्र है। एक सूत्र तो गोस्वामीजी ने यह कहा कि भगवान का जो रूपावतार होता है, वह तो कभी-कभी होता है, पर नामावतार तो शाश्वत है। नाम को प्रगट करने के लिए तो कोई प्रयत्न नहीं करना है। भगवान तो एक विशेष काल में मूर्तरूप में प्रत्यक्ष आते हैं, पर भगवान का नाम तो सहजरूप से सदा रहते हैं, ये तो शाश्वत हैं, प्रगट ही हैं। एक सुविधा यह है कि जैसे भगवान के रूप को प्रगट करने लिए साधना की आवश्यकता है, नाम को प्रगट करने के लिये किसी साधना, किसी परिश्रम की आवश्यकता नहीं है। पर गोस्वामीजी ने एक बड़ी भावपूर्ण बात कही और वही शरणागति की भावना है। किसी ने पूछा कि जब कोई साधक जिह्वा से रामनाम लेगा, तो उस जिह्वा और रामनाम का क्या सम्बन्ध है? तो गोस्वामीजी ने कहा –

जीह जसोमति हरि हलधर से। १/१९/८

'रा' और 'म' दो अक्षर हैं। 'रा' कृष्ण है और 'म' बलराम है और जिह्वा यशोदा है। बड़ा विचित्र सा लगता है। जिह्वा कौशल्या है और 'रा', और 'म' राम-लक्ष्मण हैं, यह कहना तुलसीदासजी के लिए अधिक सहज होता या होना चाहिए। पर उन्होंने इस प्रसंग में जिह्वा को कौशल्या न बनाकर यशोदा बनाया और यशोदा बनाने के पीछे और 'रा' और 'म' को कृष्ण-बलराम बनाने के पीछे एक शरणागति की भावना है। क्या उन्होंने कहा कि जिनकी जिह्वा कौशल्या हो, वे वन्दनीय हैं। मेरी जीह्वा तो यशोदा है और इसका अभिप्राय यह है कि यशोदा और कौशल्या में बड़ा अन्तर यह है कि कौशल्याजी तो पूर्व जन्म में सतरूपा थीं और सारे रसों का परित्याग कर देती हैं। उसके बाद अगले जन्म में भगवान राम अवतरित होते हैं। गोस्वामीजी ने कहा, महाराज मेरी जिह्वा तो इन षड्रसों को कभी छोड़ ही नहीं पाती, तो हम कैसे अपनी जीह्वा की तुलना कौशल्या से करें। दूसरी बात, यज्ञ किया महाराज दशरथ ने, भगवान राम गर्भ में आए और मध्य दिन में कौशल्याजी के सामने प्रगट हुए और कौशल्याजी ने दिव्य स्तुति की। किन्तु गोस्वामीजी ने कहा कि यशोदा तो गहरी नींद में सो रही थी। उन्होंने तो कोई प्रयत्न नहीं किया और वसुदेव लाकर बगल में सुला गये और उसके बाद भी यशोदा की नींद नहीं खुली, तो भगवान कृष्ण ने ही रो-रो कर जगा दिया। महाराज, मेरी जिह्वा तो सो रही है, यह क्या जप करेगी, आप ही कृष्ण बनकर इसको जगा दीजिए और जप करा दीजिए तो हो जाये, नहीं तो मैं तो जप भी नहीं कर सकता। कहने में तो बड़ा सरल है कि राम-नाम दो अक्षर तो हैं, इसे कहने में क्या कठिनाई है? पर होता है क्या? कितने लोग ऐसे हैं, जो नाम का जप करते रहते हैं? कई लोग कहते हैं, नाम की बड़ी महिमा है, नाम-जप करना चाहिए, पर व्यंग्य करते हुए गोस्वामीजी ने कहा –

एकहि एक सिखावत जपत न आप।

(बरवै रामायण दोहा ६४)

सभी एक-दूसरे को उपदेश दे रहे हैं राम नाम की महिमा का, लेकिन स्वयं जप नहीं कर रहे हैं। मानो गोस्वामीजी की भावना यह है कि प्रभु, हमारी जो जिह्वा है, वह तो तमोमयी निद्रा में सो रही है, अब आप ही आकर जगा लीजिए। मानो उलट दिया उन्होंने, आगम शास्त्र में कहा गया है कि मंत्र को पहले जगाना चाहिए। तो लोग मंत्र जगाया करते हैं। बहुत से लोग तो होली, दिवाली को जगा लेते हैं। गोस्वामी जी ने कहा – जो मंत्र को जगाते हैं, वे जानें, मुझे तो ऐसा मंत्र चाहिए जो मुझे जगावे। मैं मंत्र को क्या जगाऊँगा? ऐसा लगता है मानो वे प्रभु से, वे नाम-भगवान से यह प्रार्थना करते हैं कि आप ही स्वयं कृपा करके, जैसे यशोदा को जगाते हैं और रोते हुए देखकर यशोदा उन्हें गोद में ले लेती हैं, उसी प्रकार से आप नाम-भगवान मेरी जिह्वा पर स्वयं आकर विराज जाइए और जप कराइए। **(क्रमशः)**

अपने व्यक्तित्व को निखारिए

कृष्णचन्द्र टवाणी,
प्रधान सम्पादक, 'अध्यात्म अमृत'
राजस्थान

किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके व्यक्तित्व से होती है। प्रभावशाली व्यक्तित्व वालों की ही समाज तथा राष्ट्र में प्रतिष्ठा होती है। यदि आप चाहते हैं कि आपका व्यक्तित्व विशाल, आकर्षक, सरल, शान्त एवं प्रभावशाली हो, तो निम्न सात बातों पर विशेष ध्यान देना होगा।

आचरण निष्कपट रखें – व्यक्तित्व विकास के लिये, व्यक्तित्व को निखारने के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण बात अपने जीवन में आचरण का है। आप अपने आचरण को ऐसा बनावें, जिससे सर्वत्र आपका आदर सत्कार हो।

सद्गुणों को अपनावें – भड़कीले अथवा कीमती कपड़े पहनने से कभी व्यक्तित्व आकर्षक नहीं होता है। अधिक आभूषणों के श्रृंगार करने से भी व्यक्तित्व नहीं निखरता है। व्यक्तित्व निखरता है केवल चरित्र से। चरित्र को उसके गुण ही सजाते-सँवारते हैं। गुण ही व्यक्ति को महान बनाकर समाज एवं राष्ट्र में प्रतिष्ठित करते हैं। गुणहीन व्यक्ति आदर के पात्र नहीं होते हैं। जबकि गुणवान व्यक्ति सर्वत्र आदर और यश के पात्र होते हैं। व्यक्ति के सात्त्विक गुण ही उसके व्यक्तित्व की कसौटी होते हैं, क्योंकि सात्त्विक गुण ही व्यक्ति की वाणी में विनम्रता, व्यवहार में सरलता और विचारों में शुचिता लाते हैं।

आत्मविश्वासी बनें – आत्मविश्वास को सदा दृढ़ बनाये रखें। जिसके भीतर आत्मविश्वास होता है, वह कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी घबराता नहीं है। जिसने आत्मविश्वास खो दिया, मानो उसने सर्वस्व खो दिया। पूज्य स्वामी श्रीगोविन्दगिरि जी महाराज का तो यहाँ तक कहना है कि चरित्र से भी बढ़कर आत्मविश्वास है। आत्मविश्वास की शक्ति से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है। आत्मविश्वासी व्यक्ति के मुखमंडल की आभा कभी मलिन नहीं होती है, अपितु चेहरा कान्ति युक्त रहता है।

समय का आकलन करें – मनुष्य के जीवन में समय सबसे मूल्यवान है। समय की गति, स्वभाव व प्रवृत्ति को जो व्यक्ति पहचान कर कार्य करता है, उसको ही सफलता मिलती है। जो व्यक्ति समय पर उचित निर्णय नहीं ले सकते हैं, उनकी बाद में असफलता निश्चित होती है। समय का सदुपयोग करनेवाले व्यक्ति ही ऊँचाई के शिखर पर पहुँचते हैं। आज हर मनुष्य स्वयं से अधिक दूसरों के बारे में सोचता है। किसी दूसरे के बारे में सोचकर अपना अमूल्य समय नहीं गँवाना चाहिए। अपने कार्य को निर्धारित समय में पूर्ण करनेवाले व्यक्ति ही प्रतिष्ठित होते हैं।

दूसरों के प्रति स्नेह व सहानुभूति रखें – दूसरों के प्रति आपके हृदय में स्नेह और सहानुभूति होनी चाहिए। जब आप किसी को प्यार देंगे, तो दूसरा भी आप पर प्यार लुटाएगा। दूसरों को अपमानित न करें और न ही कभी दूसरों की शिकायत करें। याद रखें कि अपमान के बदले में अपमान ही मिलता है। दूसरों में जो भी अच्छे गुण हैं, उनकी ईमानदारी के साथ दिल खोलकर प्रशंसा करें। झूठी प्रशंसा कदापि न करें। यदि आप किसी की प्रशंसा नहीं कर सकते, तो कम-से-कम दूसरों की निन्दा कभी भी न करें। किसी की निन्दा करके आपको कभी भी किसी प्रकार का लाभ नहीं मिल सकता, बल्कि उलटे आप उसकी दृष्टि में गिर सकते हैं। अपने स्वभाव से सदैव दूसरों के मन में अपने प्रति तीव्र आकर्षण का भाव उत्पन्न करने का प्रयास करें। दूसरों को सच्ची मुस्कान प्रदान करें। प्रत्येक व्यक्ति अपनी कीर्ति, प्रशंसा अत्यधिक चाहता है। यदि आप दूसरों

शेष भाग पृष्ठ ४५ पर

दृग्-दृश्य-विवेकः (८)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यत: 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

निर्विकल्प समाधि

अब निर्विकल्प समाधि का वर्णन किया जाता है, जिसका अभ्यास विषय-आश्रित पद्धति के अनुसार किया जाता है –

स्तब्धीभावो रसास्वादात्तृतीय: पूर्ववन्मत: ।
एतै: समाधिभि:षड्भिर्नयेत् कालं निरन्तरम् ।।२९।।

अन्वयार्थ – **रसास्वादात्** (ब्रह्म में) रस की अनुभूति से (बाह्य पदार्थों के प्रति होनेवाला चित्त में) **स्तब्धीभाव:** निश्चलता का भाव **पूर्ववत्** पहले के समान ही (**पण्डितानां** विद्वानों द्वारा) **तृतीय: (समाधि:)** तीसरे अर्थात् निर्विकल्प समाधि के रूप में **मत:** वर्णित हुआ है। **एतै:** इन **षड्भि: समाधिभि:** छह प्रकार की समाधियों के द्वारा **निरन्तरम्** निरन्तर **कालं** समय **नयेत्** बिताना चाहिये।

भावार्थ – (ब्रह्म में) रस की अनुभूति से (बाह्य पदार्थों के प्रति होनेवाला चित्त में) निश्चलता का भाव – पहले के समान ही (विद्वानों द्वारा) तीसरे अर्थात् निर्विकल्प समाधि के रूप में वर्णित हुआ है। सर्वदा, इन छह प्रकार की समाधियों का अभ्यास करते हुए कालयापन करना चाहिये।

सर्वत्र ब्रह्मानुभूति

पूर्वोक्त समाधि (एकाग्रता) के निरन्तर अभ्यास के फलस्वरूप, साधक के लिये यह क्रमश: सहज-स्वाभाविक हो जाता है और तब वह सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति करता है –

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधय: ।।३०।।

अन्वयार्थ – **देहाभिमाने** देहात्मभाव के **गलिते** लुप्त हो जाने पर; (और) **परमात्मनि** परमात्मा का **विज्ञाते (सति)** बोध हो जाने पर – **मन:** मन **यत्र यत्र** जहाँ-जहाँ **याति** जाता है, **तत्र तत्र** वहाँ-वहाँ **समाधय:** समाधियों की अनुभूति (**भवन्ति** होती है)।

भावार्थ – देहात्मभाव के लुप्त हो जाने पर; (और) परमात्मा का बोध हो जाने पर – मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं-वहीं समाधियों (ब्रह्म) की अनुभूति (होती है)।

सर्वोच्च अनुभूति का फल

अब मुण्डक उपनिषद (२/२/८) के एक मंत्र द्वारा सर्वोच्च अनुभूति के फल का वर्णन किया जा रहा है –

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया: ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।३१।।

अन्वयार्थ – **तस्मिन्** उस **परा-अवरे** (कारण-रूप) उत्कृष्ट तथा (कार्यरूप) निकृष्ट (ब्रह्म) का **दृष्टे** (आत्मा के रूप में) दर्शन हो जाने पर – **हृदय-ग्रन्थि:** हृदय का गाँठ **भिद्यते** टूट जाती हैं, **सर्वसंशया:** सारे संशय **छिद्यन्ते** कट जाते हैं **च** और **अस्य** उसके **कर्माणि** सारे कर्मफल **क्षीयन्ते** क्षय को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ – उस (कारण-रूप) उत्कृष्ट तथा (कार्य-रूप) निकृष्ट ब्रह्म का (आत्मा के रूप में) दर्शन हो जाने पर – हृदय की गाँठ टूट जाती हैं, सारे संशय कट जाते हैं और व्यक्ति के सारे कर्मफल क्षय को प्राप्त होते हैं।

जीव तथा उसकी उपाधियाँ

अगले श्लोक में जीव का वास्तविक स्वरूप बताया गया है। जीव वस्तुत: – साक्षी तथा ब्रह्म से अभिन्न है। उपाधियों के साथ तादात्म्य हो जाने के कारण साक्षी स्वयं को जीव समझता है –

अवच्छिन्नश्चिदाभासस्तृतीय: स्वप्नकल्पित: ।
विज्ञेयस्त्रिविधो जीवस्तत्राद्य: पारमार्थिक: ।।३२।।

अन्वयार्थ – **जीव: इति** जीव को **त्रिविध:** तीन प्रकार का **विज्ञेय:** समझना होगा – (पहला) **अवच्छिन्न:** सीमाबद्ध, (दूसरा) **चिदाभास:** प्रतिबिम्बित चैतन्यवाला (और) **तृतीय:** तीसरा **स्वप्न-कल्पित:** स्वप्न में कल्पित; **तत्र** इनमें से **आद्य:** पहला **पारमार्थिक:** पारमार्थिक अर्थात् ब्रह्मरूप है।

भावार्थ – जीव को तीन प्रकार का समझना होगा – (पहला) (प्राणादि द्वारा) सीमाबद्ध (साक्षी), (दूसरा) चैतन्य के आभास से युक्त (और) तीसरा स्वप्न में कल्पित; इनमें से पहला (सीमाबद्ध साक्षी) पारमार्थिक अर्थात् ब्रह्मरूप है।

उत्तर-पूर्वी भारत में स्वामी विवेकानन्द के सेवादर्श को साकार करनेवाले कर्मठ विलक्षण संन्यासी : केतकी महाराज

पूनम सिन्हा, श्रीनारायण प्रसाद सिंह

प्रो. हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत के पूर्वी क्षेत्र की यात्रा करते हुए हम ११ फरवरी, २०१९ की शाम में मेघालय के चेरापूँजी (सोहरा) रामकृष्ण आश्रम में पहुँचे। सायंकाल में हम आश्रम के सचिव स्वामी अनुरागानन्द महाराज से मिलने पहुँचे। उन्होंने पूछा, 'यहाँ आपको कहाँ-कहाँ घूमना है?' हमने झरना, लीविंग रुट ब्रिज देखने में अपनी रुचि व्यक्त की। उन्होंने परामर्श दिया, 'आप शेला के रामकृष्ण आश्रम को कल जाकर देखें। वह शेला नदी के तट पर स्थित है। वहाँ से आपको बांग्लादेश भी दिखेगा।' दीवार पर टँगे एक चित्र की ओर देखते हुए उन्होंने श्रद्धाविगलित कण्ठ से बताया कि ''यह स्वामी प्रभानन्द 'केतकी महाराज' का चित्र है। उन्होंने यहाँ के जन-जीवन में सुधार हेतु रामकृष्ण भावधारा के संन्यासी के रूप में सर्वोच्च त्याग किया। प्रभानन्द महाराज की कृपा से ही इस आश्रम की स्थापना हुई। शेला आश्रम की स्थापना भी १९२४ में युवा संन्यासी स्वामी प्रभानन्द जी ने की। उन्होंने शेला एवं उसके आस-पास कई स्कूल खोले।'' रात में हमारे भोजन के समय चेरापूँजी आश्रम के ही एक अन्य संन्यासी ने स्वामी प्रभानन्द को याद करते हुए अत्यन्त भावुक होकर कहा, 'उस समय शेला में आना-जाना अत्यन्त दुर्गम था। यातायात के साधन नहीं थे। स्वामी प्रभानन्द यहाँ से पैदल २६ मील वीरान सड़कों, पहाड़ों को पार करते हुए शेला में जाकर स्कूल चलाते थे। इसी क्रम में वे बीमार हुए और कम उम्र में ही ब्रह्मलीन हो गये। स्वामी प्रभानन्द के विषय में अधिक जानने की हमारी उत्कण्ठा बलवती हुई। स्वामी अनुरागानन्द ने हमें स्वामी प्रभानन्द पर श्री कुमुद रंजन राय चौधरी द्वारा लिखित एक पुस्तक - 'A Story of Self Sacrifice' दी। उस पुस्तक को पढ़ने के बाद स्वामी प्रभानन्द जी के व्यक्तित्व पर लिखना अनिवार्य लगा। आज के स्वार्थबहुल समाज के बीच ऐसे संत पुरुष की स्मृति मरुस्थल के बीच स्वच्छ, शीतल पानी के सोते की तरह है।

स्वामी प्रभानन्द 'केतकी महाराज'

स्वामी प्रभानन्द (केतकी) महाराज का जन्म सिलहट जिले के पहाड़पुर गाँव (वर्तमान में बांग्लादेश) के एक समृद्ध संयुक्त परिवार में हुआ था। वे अपने माता-पिता की प्रथम संतान थे। ज्योतिषी ने इनके जन्म-स्थान एवं समय की गणना कर बताया कि 'यह बालक राजा के समान सम्मानित होगा।' जन्मकुण्डली के आधार पर इनका नाम केतकी रखा गया। इनका जीवन साक्षी है कि उन्होंने अपने नाम को सार्थक किया। केतकी के फूल की मीठी गंध एवं कोमलता सबको आह्लादित एवं आकर्षित करती है।

पारिवारिक समृद्धि एवं लाड़-प्यार में पलते हुए इन्होंने बाल्यावस्था से किशोरावस्था में प्रवेश किया। कम उम्र में ही ये आध्यात्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों से जुड़ते गये। इस कम उम्र में अपने हमउम्र बच्चों से इनकी मानसिक एवं क्रियागत भिन्नता इनके परिवारजनों को आश्चर्य एवं असमंजस में डाल देती थी। इनके गाँव की नदी में हर साल नाव-दौड़ की प्रतियोगिता आयोजित होती थी। जब ये १२ वर्ष के थे, तो आसपास के गाँवों से छोटी-छोटी नावें नदी में दौड़-प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए सज-धज कर आयीं। यह इस क्षेत्र का वार्षिक समारोह था। संगीतमय वातावरण में उत्सव का वातावरण था। केतकी के पिता कालीकृष्ण राय चौधरी इस कार्यक्रम के मुख्य आयोजक एवं कर्ता-धर्ता थे। नदी में अपने गंतव्य की ओर जाने के पूर्व सभी नाविकों ने एक-एक कर कालीकृष्ण राय चौधरी को उनके घर पर आकर कृतज्ञतापूर्ण अभिवादन किया। सभी नाविक नदी में अपनी रंगीन पतवार उठाकर तान दे रहे थे। नाव के नुकीले अग्रभाग पर छोटे-छोटे बच्चे किलकारी करते नाच रहे थे। केतकी को उनका नाचना अत्यन्त रोमांचक और मजेदार लग रहा था। केतकी को तैरना नहीं आता था,

किन्तु उन्होंने पोताग्र पर नाचने की इच्छा प्रकट की। केतकी की हार्दिक इच्छा एवं हठ के कारण पिता ने अनुमति दे दी। पर वे चिन्तित थे। अगर पैर फिसल गया तो? यदि पानी में गिरकर डूब गया, तो क्या होगा? पर केतकी ने पोताग्र पर पूरे मन से सफलतापूर्वक नृत्य कर सबका मन मोह लिया और एक विजयी नायक की भाँति सफल सिद्ध हुआ।

केतकी ने अनुभव किया कि गाँव का स्कूल अच्छा नहीं है। इसलिए उन्होंने शहर के स्कूल में पढ़ने का निश्चय किया। घर के सभी लोग उनकी इस इच्छा से असहमत थे। पर केतकी उचित अवसर की खोज में लगे रहे। गाँव में वर्षा का आरम्भ हो चुका था। चारों ओर पानी ही पानी। नदी में पानी की खतरनाक लहरें उछाल मार रही थीं। इसी में केतकी को हरियाली की एक डोर-सी दिखी। यह हरी डोर ऊँची मेड़ों पर पेड़-पौधों के कारण थी। वे उसी लहरदार मेड़ों पर डूबते-पार करते तीन मील दूर स्टीमर की जेट्टी के पास घर छोड़कर पहुँच गये। वहाँ से वे सुलतानगंज नामक शहर (सबडिवीजन) में पहुँच कर एक सम्बन्धी की मदद से स्कूल में पढ़ने लगे।

केतकी पढ़ने में विलक्षण थे। स्कूल की पढ़ाई पूरी कर वे ढाका (अब बांग्लादेश की राजधानी) में कॉलेज की पढ़ाई करने चले गये। वहाँ वे अपने नाना के घर में रहकर पढ़ाई कर रहे थे। उनका छोटा भाई प्रमोद भी पढ़ाई करने उनके पास आ गया। संस्कृत के इस वाक्य 'पढ़ाई मितव्ययी एवं आडम्बरहीन साधना है', का अर्थ वे जानते-समझते थे। वे अपनी सफलता से पिताजी का मनोबल ऊँचा रखना चाहते थे। उनके नाना के घर में और भी बहुत लोग एवं विद्यार्थी रहते थे, जिनसे उन्हें पढ़ाई में असुविधा होती थी। अत: केतकी अन्य जगह एक कमरा किराये पर लेकर रहने-पढ़ने चले गये। उनके साथ उनका भाई प्रमोद भी चला गया। बगल में ही रामकृष्ण आश्रम था। दोनों भाई वहाँ नियमित जाते थे। उस समय ढाका के मिशन के प्रधान सुकुल महाराज थे और वे दोनों भाइयों को स्नेह करते थे। पढ़ाई के अतिरिक्त मानसिक एवं शारीरिक साधना में भी दोनों भाइयों में रुचि पनपी। वस्तुत: सेवाभाव का प्रादुर्भाव उनमें इसी अवधि में होने लगा।

१९२१ में केतकी ने बी.ए. (स्नातक) की उपाधि सफलतापूर्वक प्राप्त की। इस अवधि में अँग्रेजी शासन के विरोध में राजनीतिक विरोध का स्वर भी बढ़ने लगा। गुप्त संगठन एवं क्रान्तिकारी गतिविधि में दोनों भाइयों ने रुचि लेना प्रारंभ किया। उनके कमरे में ही गुप्त सभाएँ होने लगीं। वे अक्सर अपने कक्ष में चरखा चलाते, सूत कातते एवं गीत गाते रहते, जिससे पुलिस भ्रमित रहे। उनके कक्ष के बगल में एक एंग्लो-इंडियन पड़ोसी रहते थे। उनके गाने एवं चरखा की आवाज उस एंग्लो-इंडियन पड़ोसी को अच्छा नहीं लगता था। उसने उन्हें गाना एवं चरखा के लिए मना किया। पर केतकी और उनके भाई ने और जोर से गाना एवं चरखा चलाना जारी रखा। एक दिन वे महोदय पिस्टल लेकर उन्हें धमकाने आये। केतकी ने अपना सीना तान कर उन्हें गोली चलाने के लिए ललकारा। उन्होंने भाग कर पुलिस में सूचना दे दी। अन्त में केतकी एवं प्रमोद को घर छोड़कर आश्रम के स्वामीजी की सहमति से आश्रम में आश्रय लेना पड़ा। कुछ दिनों बाद दोनों भाई विधिवत् आश्रम में दीक्षित हो गये।

यह समाचार ढाका से उनके गाँव में पिता के पास पहुँचा। वे मूर्च्छित हो गये। वे पुलिस के साथ ढाका रामकृष्ण आश्रम पहुँचे। दोनों पुत्रों को पकड़कर गाँव में लाकर पहरा बैठा दिया। उनके पिता ने उन्हें घर पर रहकर ही सेवा करने का परामर्श दिया। उन्होंने अपने दरवाजे पर ही भगवान श्रीरामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द का मन्दिर बनवा दिया। बच्चों के लिए एक स्कूल खोल दिया। गरीबों के लिए बुनाई हेतु हस्तकरघा भी बैठा दिया गया। दोनों भाई मन्दिर में पूजा करने लगे, बच्चों को पढ़ाने लगे एवं गरीबों को हस्तकरघा का प्रशिक्षण देने लगे। पिता ने अब दोनों की शादी करने की योजना बनाई। इसकी जानकारी मिलते ही केतकी ने घर छोड़कर स्टीमर से आगे बढ़ने का निर्णय लिया। केतकी महाराज वहाँ से ढाका मिशन आकर फिर बेलूड़ मठ आ गये। वहाँ स्वामी शिवानन्द महाराज से दीक्षा लेकर पूर्णत: संन्यासी हो गये। परम्परा के अनुसार पुराने नाम 'केतकी' की जगह उनका संन्यास-नाम 'स्वामी प्रभानन्द' हो गया।

छोटा भाई प्रमोद बहुत बीमार हुआ, तो इसकी सूचना

पाकर स्वामी प्रभानन्द पुन: गाँव आये। तीन दिन के बाद भाई प्रमोद की मृत्यु हो गई। माता-पिता की इच्छा के विपरीत वे पुन: बेलूड़ मठ आ गये। पर उनकी माँ की आँखों से आँसू अविरल बहता रहा। इसी अवधि में मेघालय के खासी-जयन्तीया पहाड़ी में जनजातीय लोगों के उत्थान हेतु बेलूड़ मठ में विद्यालय एवं सामाजिक कार्यो के लिए केन्द्र खोलने का आग्रह आ रहा था। चर्च के द्वारा वहाँ के जनजाति लोगों का धर्म-परिवर्तन बहुत तेजी से हो रहा था। यह ब्रिटिश-साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। इसे रोकने तथा स्थानीय संस्कृति की रक्षा के लिए रामकृष्ण मिशन ने स्वामी प्रभानन्द (केतकी) महाराज को खासी पहाड़ी में भेजने का निर्णय लिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में कलकत्ता के ब्रह्म समाज ने भी चर्च के समानान्तर कुछ करने की योजना बनायी, पर वह असफल रहा। खासी लोग यह जानते थे कि रामकृष्ण मिशन मानवतावादी संगठन है। अत: यह धार्मिक मतान्तरण नहीं करेगा।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का स्मरण कर केतकी महाराज मेघालय के लिये चल पड़े। वे शेला नामक गाँव में पहुँचे। यह मेघालय का छोटा सुदूर गाँव है। यह १९२३ का जाड़े का मौसम था। वे मथुराचरण नामक व्यक्ति के घर में ठहरे। वे एक फार्मासिस्ट थे। वे भी चर्च की गतिविधि से पीड़ित रहते थे। उन्होंने प्रभानन्द महाराज को पूरा सहयोग किया। कुछ दिनों के बाद केतकी महाराज मथुराचरण का घर छोड़कर एक सुदूर पहाड़ी पर एक झोपड़ी बनाकर रहने लगे। वहाँ वे भिक्षा पर आधारित जीवन जीने लगे। भिक्षा में मिले अन्न से ही काम चलाते थे। केतकी महाराज लोगों से मिलजुल कर उनकी भाषा को समझने लगे। वे उस क्षेत्र के खासी लोगों के घर सुबह-सुबह पहुँच कर 'कुबलाई-कुबलाई' कहते, जिसका मतलब होता 'शुभ प्रभात'। खासी भाषा की कोई लिपि नहीं थी। चर्च द्वारा रोमन लिपि में खासी भाषा में बाइबिल छापकर बाँटा जाता था।

बाद में स्वामी प्रभानन्द लोगों से मिलकर अपने उद्देश्य को बताने लगे, छोटी-छोटी सभाएँ कीं तथा लोगों को विश्वास दिलाया कि उनकी स्थानीय संस्कृति की रक्षा जरूरी है। हमारा जीवन-यापन भिन्न है, पर हम सब भारतीय हैं। यह उनका सूत्र वाक्य था। उन्होंने चर्च एवं रामकृष्ण मिशन के उद्देश्य की भिन्नता को लोगों को समझाया। उन्होंने कहा कि रामकृष्ण मिशन स्वार्थहीनता में विश्वास करता है। लोगों को बात समझ में आने लगी एवं एक गतिशील संगठन बनने लगा।

अब काम करने का समय आ गया था। केतकी महाराज ने १९२४ में शेला में पहला स्कूल स्थापित किया। अगल-बगल के ग्रामीण लोगों में संवाद पहुँचने पर अनेक गाँवों से स्कूल स्थापित करने के प्रस्ताव आने लगे। शेला के राजा के यहाँ से आर्थिक मदद का प्रस्ताव आने लगा। इससे एक आश्रम एवं एक दातव्य अस्पताल की स्थापना की गई। इस तरह खासी जयन्तीया पहाड़ी में पहला रामकृष्ण आश्रम स्थापित हुआ। उस समय के राजा उसिमेय की मदद से प्रभानन्द महाराज ने सोहरा (चेरापूँजी) में रामकृष्ण मिशन का केन्द्र स्थापित किया। यहाँ एक स्कूल, छात्रावास, एक दातव्य अस्पताल और एक आश्रम स्थापित किया गया। इसी स्कूल से माननीय गिलवर्ट स्वेल ने माध्यमिक परीक्षा पास की तथा बाद में वे लोकसभा में उप-सभापति बने।

Ram Krishna Upper Primary School at Thana Road, Police Bazar, Shillong was started by Ketaki Maharaj in 1937

इन सबमें महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रभानन्द महाराज ने खासी लोगों का विश्वास पाने हेतु पहले सामाजिक कार्य, जैसे – स्कूल, अस्पताल इत्यादि स्थापित करना आरम्भ किया। बाद में आश्रम एवं मन्दिर का निर्माण हुआ। पादरी लोग पहले चर्च बनाते, फिर खासी लोगों का धर्मान्तरण कराते, तब स्कूल या अस्पताल बनवाते। प्रभानन्द महाराज का उद्देश्य रामकृष्ण मिशन के मानवतावादी उद्देश्य को आगे बढ़ाना था। इस क्षेत्र में उनका आगमन एक भूचाल जैसा था। कैथोलिक पादरियों ने ब्रिटिश सरकार को उकसाया कि इस संन्यासी को इस क्षेत्र से बाहर किया जाय। ब्रिटिश शासन का प्रतिनिधि शेला पहुँच कर प्रभानन्द महाराज से बात कर बहुत प्रभावित हुआ तथा सभी तरह की सहायता करने का आश्वासन देकर चला गया। पर पादरी लोग मानने वाले नहीं थे। एक दिन केतकी महाराज पहाड़ी को पार कर रहे थे। रास्ते में पादरियों का झुंड उन्हें घेर‌कर कहने लगा, 'यह पहाड़ चर्च का है, तुम इसे पार नहीं कर सकते। या तो भाग जाओ या मारे जाओगे।' केतकी महाराज ने अपनी छड़ी को उठाकर कहा, 'अगर मैं मरूँगा तो तुम लोग भी

मरोगे।' उनके आत्मविश्वास के सामने विश्वासहीन पादरी कहाँ ठहरते! सब भाग गये।

मेघालय रामकृष्ण मिशन का नाम जब आगे बढ़ा, तो भारत के समतल मैदान में रहनेवाले कुछ लोग सहयोग करने के लिए मेघालय के पहाड़ी क्षेत्र में भेजे गये। पर वहाँ की जलवायु एवं कठिन जीवन से वे लोग समझौता नहीं कर सके। फलत: अधिकांश बीमार होकर लौट गये। फिर स्थानीय खासी लोगों को ही कार्यकुशल बनाकर सहयोग लिया गया। इससे काम अधिक एवं विश्वसनीय होने लगा। १९२९ में केतकी महाराज ने अपना केन्द्र शिलांग में बनाया। उस समय वह आसाम की राजधानी था। पहले शिलांग में आश्रम किराये के घर में खुला। बाद में उन्होंने जमीन खरीद कर बहुत ही सुन्दर आश्रम बनवाया। इसमें शेला के कुछ छात्रों की उच्चतर पढ़ाई के लिए छात्रावास भी खोला गया। उन्होंने कुछ खासी लड़कों एवं लड़कियों को रामकृष्ण आश्रम, कलकत्ता, निवेदिता गर्ल्स स्कूल, बागबाजार, कलकत्ता तथा आनन्द आश्रम, ढाका में भी उच्च शिक्षा हेतु भेजा। १९२९ में वे कुछ खासी पुरुष एवं स्त्री को बेलूड़ मठ, हावड़ा भी ले गये। वहाँ उन लोगो ने दीक्षा भी ली। ऐसा माना जाता है कि पी.ए. संगमा, लोकसभा अध्यक्ष, की प्रारंभिक शिक्षा रामकृष्ण मिशन स्कूल से ही आरम्भ हुई।

केतकी महाराज का ध्यान दुर्गा पूजा उत्सव पर भी गया। परम्परानुसार खासी स्त्री एवं पुरुष दुर्गा पूजा में सिलहट जाते थे। वहाँ वे हिन्दू होटल में जगह नहीं मिलने पर मुसलमान लोगों के होटल में भी ठहरते थे, जिनसे उनको काफी कठिनाई होती थी। अत: प्रभानन्द महाराज ने शेला में ही दुर्गापूजा का उत्सव आयोजित करना आरम्भ किया। पिछले ९० वर्षों से इस आयोजन का होना आज भी खासी लोगों को उत्साहित रखता है। १९२४-१९३१ तक प्रभानन्द महाराज एक दिन में दो-दो बार सोहरा (चेरापूँजी) से शेला २६ मील पैदल चलकर पहाड़ी पार करते हुए अपना काम करते रहे। कभी-कभी वे भूखे भी रह जाते थे। वे खासी भाषा में पुस्तकें भी लिखते रहे।

अत्यन्त परिश्रम के कारण प्रभानन्द महाराज बीमार हो गये। डॉ० विधानचन्द्र राय ने कहा कि पहाड़ी से कोई वाइरस इनके शरीर में प्रवेश कर इनके मस्तिष्क एवं मांसपेशियों को रुग्ण कर रहा है। इसका उपचार वे नहीं जानते थे। वे बीमार होकर भी खासी भाषा में श्रीरामकृष्ण की जीवनी लिखते रहे। १९३६ में भगवान श्रीरामकृष्ण के १००वें जन्मोत्सव पर प्रभानन्द महाराज द्वारा लिखित किताब प्रकाशित हो गयी। शिलांग में उसका विमोचन हो गया। अन्त में उन्होंने बीमारी की अवस्था में कहीं दूसरी जगह ले जाने की इच्छा प्रकट की। १९३६ में वे खासी पहाड़ी को छोड़कर बेलूड़ मठ आ गये। वहाँ से वे श्रीरामकृष्ण मिशन सोनार गाँव (अब बंग्लादेश) में आ गये। वहाँ से उनकी माँ उन्हें अपने गाँव-घर लाकर उनकी सेवा सुश्रुषा की। प्रभानन्द (केतकी) महाराज १९३८ में ब्रह्मलीन हो गये।

उन्होंने अपने परिव्राजक नाम प्रभानन्द को भी सार्थक किया। विभिन्न स्कूलों, अस्पतालों एवं उनके द्वारा किये गये कल्याणकारी कार्यों के प्रकाश का आनन्द आज भी वहाँ के आदिवासी, सामान्य जन एवं आश्रम के संन्यासीगण अनुभव करते हैं। आज उनके बीच उनकी नश्वर काया नहीं है, किन्तु उनकी सेवा, तपस्या और उनके त्याग का प्रकाश वहाँ के वातावरण में फैलकर ऊर्जा एवं आनन्द की अनुभूति करा रहा है। विशेषकर गरीब आदिवासी बच्चों का व्यक्तित्व उनके त्यागमय कर्म के कारण अत्यन्त उन्नत हो रहा है। मेघालय के रामकृष्ण आश्रम के संन्यासीगण उनकी स्मृति से प्रेरणा और शक्ति पाकर निरन्तर उनकी योजनाओं को पूरा करने और स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों एवं उद्देश्यों को पूर्ण करने में लगे हुए हैं। वहाँ जाकर एक अद्भुत शान्ति एवं आध्यात्मिक भावों का अनुभव होता है। ○○○

पृष्ठ २६ का शेष भाग

२१ वर्ष की उम्र में समाधि लेने जा रहे थे, तो उनके अधरों पर नवाँ अध्याय ही था। इसी का पाठ करते-करते वे समाधि में लीन हो गए। आप तो जानते हैं कि उन्होंने जीवित समाधि ली थी। सन्तों को, ज्ञानी-महात्माओं को यह अध्याय विशेष प्रिय है। क्योंकि यहाँ पर प्रभु ने अपने स्वरूप का उद्घाटन किया।

आठवें अध्याय के अन्त में प्रभु ने अर्जुन से कहा था कि जो मुझे जान लेता है, वह उस परम धाम को पा लेता है। यज्ञ, दान और तपस्या के माध्यम से जो फल मिलते होंगे, उन फलों को तो वह पा ही लेता है। उससे ऊपर उठकर वह मेरे परम धाम को प्राप्त हो जाता है। अर्जुन के मन में यह प्रश्न हुआ होगा कि आखिर प्रभु का वह रूप क्या है, वह स्वरूप क्या है, जिसको मैं जानूँ? उसी का उत्तर यहाँ नवें अध्याय में दिया गया है। ***(क्रमश:)***

साधुओं के पावन प्रसंग (१३)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

एक अन्य दिन वे कार्यालय में बैठकर पत्र पढ़ रहे थे। मेरे प्रवेश करते ही वे बोले, 'अरे, तुम्हारी कितनी समस्याएँ हैं?' मैंने कहा, 'ठाकुर की कृपा से मेरी कोई भी व्यक्तिगत समस्या नहीं है, तो भी आश्रम के कार्य सम्बन्धित समस्याएँ है। आपकी कितनी समस्याएँ हैं।' वे बोले, 'प्रतिदिन डाक खोलकर देखने से २५-३० समस्याएँ दिखती हैं। तुम प्रतिदिन कितने समस्याएँ देखते हो।' मैंने कहा, 'आप मठ-मिशन की समस्याएँ हल कैसे करते हैं।' वे बोले, 'ठाकुर ही सबका समाधान कर देते हैं। हम निमित्त मात्र हैं।'

किसी एक उत्सव में शाम को मैं अद्वैत आश्रम से बेलूड़ मठ गया। भरत महाराज और गम्भीर महाराज, स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के मन्दिर के सामने खड़े होकर सभा का भाषण सुन रहे थे। मैंने भरत महाराज को प्रणाम किया और झुककर घूमते हुए जिससे धूप में उनकी छाया न लाँघनी पड़े, इस प्रकार गम्भीर महाराज को प्रणाम करते समय भरत महाराज ने कहा, 'क्या! वैष्णव आचार तो बहुत सीखे हो।' मैंने कहा, 'महाराज आप गुरुजन हैं, इसलिए आप लोगों की छाया न लाँघकर घूमकर आया।' गम्भीर महाराज विनोद करते हुए बोले, 'हम क्या इतने अस्पृश्य हैं कि तुम हमारी छाया तक भी लाँघना नहीं चाहते।'

१९६६ में संन्यास-ब्रह्मचर्य दीक्षा के बाद हम सभी महासचिव महाराज के कमरे में जाकर उनसे बोले, 'महाराज, हमें कुछ बताइए।' उन्होने कहा, 'देखो, कहने के लिए इस समय कुछ भी नहीं है। स्वामीजी की जीवनी लिख रहा हूँ। उसमें एक अध्याय है – 'नवीन संन्यासी संघ'। यह लड़का मेरी लिखाई से भलीभाँति परिचित है, यह पढ़ेगा।' मैंने वह पढ़कर सबको सुनाया।

१९६९ में हमारे संन्यास के बाद एक दिन गम्भीर महाराज जी और स्वामी चिदात्मानन्द जी अद्वैत आश्रम आए। गम्भीर महाराज ने मुझे कहा, 'अब से तुम्हें प्रवचन के लिए बाहर जाना होगा। मिशन ऑफिस में तुम्हारा नाम मैंने प्रवचनकारों की सूची में डाल दिया है।' मैंने कहा, 'महाराज, प्रवचन देना मुझे अच्छा नहीं लगता। पहले जीवन गठन करूँगा, उसके बाद प्रवचन।' उन्होंने कहा, 'तुम पसन्द करो या न करो, मैंने तुम्हारा नाम सूची में डाल दिया है।' स्वामी चिदात्मानन्द जी मुझे एकान्त में बुलाकर डाँटते हुए बोले, 'तुम महासचिव महाराज के साथ बात करना नहीं जानते!' मैंने कुछ कहा नहीं। वे जानते नहीं थे कि गम्भीर महाराज के साथ मेरा कोई official सम्बन्ध नहीं था, वे मेरे लिए पितृतुल्य, गुरुसदृश अपने व्यक्ति थे।

१९६८ में स्वामी गम्भीरानन्द जी बराकपुर में अखिल भारतीय विवेकानन्द युवामहामंडल के वार्षिक शिविर का उद्घाटन करने गए। मैं भी उनके साथ था। सभा शुरू होने के पूर्व मेरे पिताजी और भैया ने उनसे एक बार हमारे घर जाने का अनुरोध किया। वे मेरे पिताजी और भैया को जानते नहीं थे। इसलिए उन्होंने पूछा, 'आप लोग कौन हैं, क्यों आपके घर जाऊँगा।' किसी ने कहा, 'ये (मेरा नाम कहते हुए) उनके पिताजी हैं।' गम्भीर महाराज जी ने मुझे बुला भेजा। मैंने भी उनसे अनुरोध कर कहा, 'आपकी चरणधूलि पड़ने से घर धन्य हो जाएगा।' उन्होंने मेरे पिताजी से कहा, 'इस शर्त पर आऊँगा कि मैं कुछ खाऊँगा नहीं। अधिवेशन के उपरान्त वे हमारे घर गए। मेरी माँ प्लेट भरकर सन्देश, रसगुल्ला और एक ग्लास पानी लेकर आई। गम्भीर महाराज बोले, 'मैंने तो पहले ही कहा था कि मैं कुछ खाऊँगा नहीं।' मैंने कहा, 'महाराज, ये गृहस्थ हैं। ठाकुर ने कहा है कि संन्यासी गृहस्थ के घर जाने से उनके मंगल हेतु थोड़ा कुछ ग्रहण करेगा। यदि उनके पास कुछ नहीं है, तो पानी माँगकर लेगा। आप थोड़ा-सा सन्देश मुख में लेकर थोड़ा पानी पी लीजिए।' उन्होंने वैसा ही किया। पांडे ड्राइवर ने आनन्द के साथ पूरी प्लेट खाली कर दी।

१९६९ में मेरा संन्यास हुआ। अगले वर्ष मुझे अमेरिका भेजने का निश्चय किया गया। दिसम्बर, १९७० में मैं मायावती से लौटा। १९७१ में स्वामीजी की जन्मतिथि के दिन मैं अद्वैत आश्रम से बेलूड़ मठ गया। गम्भीर महाराज

पुराने मिशन ऑफिस की दुमंजले के बरामदे में अकेले टहल रहे थे। मेरे प्रणाम करते हुए ही वे बोले, 'अरे, तुम्हें हालीवुड जाना होगा। मैंने कहा, 'Wrong selection, और भी कितने वरिष्ठ विद्वान साधु हैं, उन्हें भेजिए।' उन्होंने कहा, 'यदि तुम्हारी जाने की इच्छा नहीं है, तो मुझे बताओ, मैं तुम्हारी बात मीटिंग में कहूँगा।' मैंने कुछ कहा नहीं। बाद में सुनने में आया कि बेलूड़ मठ से दो-तीन नाम स्वामी प्रभवानन्द जी को भेजे गए थे। उन्होंने सब अस्वीकार कर मुझे ही बुलवाया था ।

२७ मई, १९७१ को मैं बेलूड़ मठ से गम्भीर महाराज और स्वामी निर्वाणानन्द जी के साथ मुम्बई गया। वहाँ से मुझे अमेरिका यात्रा करनी थी। गम्भीर महाराज ने पूछा, 'अरे पंचांग देखा है?' मैंने कहा, 'नहीं महाराज।' 'पंचांग (तिथि-वार) न देखकर ही यात्रा करोगे?' 'महाराज, मैं ठाकुर का कार्य करने जा रहा हूँ, यदि उनको पसन्द नहीं आएगा, तो वापस आ जाऊँगा।'

३१ मई, १९७१ को मुम्बई के गेट-वे-ऑफ इंडिया में स्वामीजी की विराट कांस्य मर्ति का अनावरण हुआ। स्वामी हिरण्मयानन्द जी तब मुम्बई आश्रम के अध्यक्ष थे। वहाँ तीन-चार दिन तक उत्सव था और एक-सौ से अधिक साधु सम्मिलित हुए थे। अधिकांश न्यासीगण आए थे। इसके बाद १ जून को मैं मॉस्को होकर पैरिस गया। वहाँ एयरपोर्ट पर स्वामी विद्यात्मानन्द जी से भेंट न होने पर बड़ी समस्या में पड़ गया। अन्तत: भारतीय दूतावास के सज्जन के यहाँ रुका। बाद में स्वामी विद्यात्मानन्द जी आकर मुझे आश्रम ले गए। इसके बाद लन्दन से मैंने स्वामी गम्भीरानन्द जी को पैरिस में हुई असुविधा के बारे में लिखा और इसके बाद १२.६.१९७१ को हॉलीवुड में निर्विघ्न पहुँचने का समाचार देकर लिखा, 'आपने मेरे हाथ-पाँव बाँधकर मुझे प्रशान्त महासागर में फेंक दिया है। यदि मुझे बचना है, तो तैरना ही होगा, इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। मैं नहीं जानता कि मेरी गति क्या होगी।' उन्होंने २४.६.१९७१ को लिखा, 'तुम्हारा लन्दन का पत्र पाकर दुख हुआ कि विदेश गमन के प्रथम चरण में ही तुम्हें कष्ट भोगना पड़ा। किन्तु १२.०६.१९७१ का द्वितीय पत्र प्राप्त कर आनन्द हुआ, विशेषकर अन्तिम पंक्ति पढ़कर कि 'मैं जानता नहीं कि मेरी गति क्या होगी' – तुम्हारी बात का उत्तर लिखता हूँ – यदि सब कुछ तुम जान जाओगे, तो भगवान स्वाधीन, स्वतन्त्र, इत्यादि जो हम बोलते रहते हैं, उसका क्या होगा? हमारा दर्शन क्या है? बाद में कष्ट भुगतना है, तो भी बोलना होगा, 'प्रभु तुम बड़े दयालु हो, तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।''

१९७२ में गम्भीर महाराज नेत्र-चिकित्सा के लिए बोस्टन की एक अस्पताल में भर्ती हुए। ब्रह्मचारी ध्रुव (अमेरिका निवासी) महाराज के सेवक के रूप में थे। मैं भी कुछ दिनों के लिए हॉलीवुड से बोस्टन के लिए गया। गम्भीर महाराज को अस्पताल में देखने के लिए जाता। ध्रुव उन्हें सुबह को Gospel of Sri Ramakrishna (श्रीरामकृष्ण वचनामृत) पढ़कर सुनाता और शाम को कठोपनिषद पढ़ता। गम्भीर महाराज बिस्तर पर लेटे हुए आँखें बंद करके उसकी व्याख्या करते। पहले दिन जब मैं गया, तो बिस्तर से उठकर बैठे और ध्रुव से कहा, 'चश्मा दो तो। देखूँ तो वह कैसा साहब हो गया है (अर्थात कोट, पैन्ट और टाई पहनकर)।' उस दिन पलंग पर बैठकर उन्होंने मुझे आलिंगन किया और खूब आशीर्वाद दिया। एक अन्य दिन मैं गया, तब ध्रुव कठोपनिषद पढ़ रहा था। मुझे देखकर उसने पढ़ना बन्द कर मेरे आने की बात कही, तो गम्भीर महाराज बोले, 'वह श्लोक पहले समाप्त होने दो, उसके बाद बात करेंगे।' उनसे सीखने को मिला कि सुख-दुख, रोग-शोक में किस प्रकार भगवान और वेदान्त-शास्त्र को अवलम्बन कर मन को उच्चभूमि पर उठाकर रखना है। शंकराचार्य के कौपीनपंचकम् में पढ़ा था – **वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तः** - यह गम्भीर महाराज के जीवन में देखने को मिला। ***(क्रमशः)***

पृष्ठ २१ का शेष भाग

परन्तु सत्संग हमें प्रोत्साहित करते रहता है। जिस प्रकार गोबर के कीड़े ने एक दिन कमल में छिद्र करके मधुरस का पान किया था, उसी प्रकार हम भी सत्संग के प्रभाव से एक-न-एक दिन आनन्द जगत में प्रवेश करते हैं और तभी हम समाज को, राष्ट्र को, मानवता को या ईश्वर को समर्पित होने के योग्य बन पाते हैं, जैसाकि गोबर के कीड़े ने अपने पुराने संस्कारों की ओर न जाकर अनन्त की यात्रा की थी, ठीक उसी प्रकार हम भी सत्संग के प्रभाव से अपने पुराने संस्कारों की ओर पुन: वापस न जाकर अनन्त आनन्द की यात्रा की ओर प्रस्थान करते हैं। ○○○

सन्दर्भ सूची – **१.** हितोपदेश ४२, **२.** रामचरितमानस, १/श्लोक ३, **३.** वही, १/२/३, **४.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत १/१९, **५.** विवेकानन्द साहित्य १/१३५-३६, **६.** रामचरितमानस, १/२/५, **७.** विवेकानन्द साहित्य ८/२३१-३२, **८.** विवेकानन्द साहित्य १/१३५

श्रीमाँ सारदा का अद्भुत जीवन

सुप्रभा मजुमदार, भोपाल

माँ शब्द से हम सभी भलीभाँति परिचित हैं। जन्म से ही हम माँ की अनुभूति करते हैं। एक होती हैं जन्मदायिनी माँ और दूसरी होती हैं जग-जननी। यहाँ मैं जग-जननी श्रीमाँ सारदा देवी के सम्बन्ध में दो शब्द अपनी लेखनी के द्वारा अभिव्यक्त करने जा रही हूँ। यद्यपि अत्यन्त सरल सीधी दिखनेवाली माँ को समझना बहुत कठिन है, फिर भी अपने जीवन को पावन बनाने हेतु इसी माध्यम से उनका चिन्तन-मनन होगा, इसी उद्देश्य से यहाँ थोड़ी चर्चा करती हूँ।

श्रीमाँ अद्भुत हैं! उनका जीवन अत्यन्त अद्भुत है! श्रीमाँ की महानता, गम्भीरता सब कुछ मन-बुद्धि से परे है। संतान को हमेशा लगता है कि वह अपनी माँ को पूरी तरह से जानता है, परन्तु माँ को, सन्तान पूरी तरह से जान नहीं पाता। क्योंकि शक्तिस्वरूपिणी माँ अगम्य हैं, उनकी लीला अबोध्य है, उनकी कृपा से केवल किंचित् बोध होता है, उतने से ही व्यक्ति तृप्त हो जाता है। श्रीमाँ सारदा के दरबार में सबको एक समान मान-सम्मान तथा स्नेह मिलता है। वे सज्जनों की भी माँ हैं और दुर्जनों की भी माँ हैं। जैसे वे स्वामी सारदानन्द की माँ हैं, वैसे ही अमजद की भी माँ हैं। जो मन से माँ को पुकारता है, माँ तत्काल सन्तान के पास पहुँच जाती हैं।

आधुनिक काल में मानव-जाति के इतिहास में श्रीमाँ सारदा का जीवन सबसे उच्च कोटि का है। छोटी-से-छोटी समस्याओं का समाधान श्रीमाँ प्रत्युत्पन्नमति से करती थीं एवं पारदर्शिता के साथ सभी कार्य पूर्ण करती थीं। माँ का मातृत्व एक वैभवस्वरूप है। पूरे जगत की माँ होते हुए भी वह सबकी अपनी माँ थीं। श्रीमाँ सभी सन्तानों की अन्तरात्मा को जानती थीं। जब कभी कोई भक्त माँ के द्वार पर आते थे, तो श्रीमाँ पहले से जान जाती थीं कि आज अमुक-अमुक भक्त आनेवाले हैं। माँ उन सबके रुचि के अनुसार भोजन की व्यवस्था करती थीं।

माँ में हम अखण्ड स्मृति-शक्ति पाते हैं। दुर्गासप्तशती में '**या देवि सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता**' कहकर देवी को बारम्बार प्रणाम किया गया है।

विश्व में हम देखते हैं कि समस्त अवतारों का आविर्भाव युग की आवश्यकतानुसार ही होता है। उनके साथ उनकी लीलासंगिनी भी आती हैं। सीता-राधा, यशोधरा, विष्णुप्रिया ये लीलासंगिनी हैं। सावित्री, दमयंती, गार्गी, मैत्रेयी भारत की महीयसी नारियाँ हैं। हमारी श्रीमाँ सारदा अवतारसंगिनी हैं, सबकी माँ हैं। उनके जीवन में अभिव्यक्त दैवीसंयुक्त मानवीय गुणों से हम शिक्षा प्राप्त कर उनका अपने जीवन में आचरण कर अपने जीवन को सँवार सकते हैं। श्रीमाँ त्याग, अनासक्ति, धैर्य और प्रेममूर्ति, पवित्र से पवित्रतमा, साहसी, कर्तव्यनिष्ठ और दक्ष सुसंचालिका हैं। सहिष्णुता, लज्जाशीलता, क्षमाशीलता, समयानुसार निपुणता के साथ कार्य सम्पन्न करना और सर्वोपरि सबको समान स्नेह-वात्सल्य प्रदान करना, ये सब गुण हम श्रीमाँ में पाते हैं। सब कार्य करते हुए, सबसे मिलते हुए, लोकव्यवहार की मर्यादा का पालन करते हुए भी माँ सबसे निर्लिप्त थीं। श्रीमाँ ब्रह्मस्वरूपिणी नित्यमुक्त, नित्यशुद्ध हैं, उनके नाम के उच्चारण मात्र से ही मानव का चित्त शुद्ध, शान्त एवं ईश्वरमय हो जाता है।

श्रीमाँ की कृपा एवं अपार करूणा से उनकी सन्तानों का कभी विनाश नहीं हो सकता। उनकी करुणामूर्ति ने युग-युग में आविर्भूत होकर नवीन-नवीन आध्यात्मिक मार्गों का आविष्कार किया है, जिससे हम ईश्वरप्राप्ति कर सकते हैं। माँ के आविर्भाव से भारतवर्ष ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के नारियों में नव-चेतना, नव-जागरण हुआ है।

श्रीमाँ शरणागति का पाठ पढ़ाती हैं। श्रीमाँ अभयकरा मूर्ति हैं, जो अपनी असमर्थता के बोझ से दबे हैं, ऐसी अपनी सन्तानों को अभय प्रदान करती हैं। वे कहती हैं – "सदा याद रखो कि तुम्हारी एक माँ है।" माँ ज्ञानी-अज्ञानी, धनी-दरिद्र, पापी-तापी में कोई भेद-भाव नहीं करती थीं। माँ जागृत अतीन्द्रिय ईश्वरीय शक्ति हैं। श्रीमाँ जगद्गुरु हैं। ईश्वरीय शक्ति का आविर्भाव हुए बिना कोई गुरु नहीं बन सकता।

नि:स्वार्थपरता, अहैतुक करुणापूर्ण आचरण उच्च कोटि का सेवाभाव श्रीमाँ में हमें दिखाई देता है। उनके दैवी अलौकिक शक्तिसम्पन्न जीवन से सभी लोग श्रद्धाभिभूत हो जाते हैं और सभी उनमें अपनी जन्मदायिनी माता के स्नेह-प्रेम का अनुभव करते हैं। वे ज्ञानदायिनी, पथ-प्रदर्शक और संकटों से रक्षा करनेवाली हैं।

माँ के जीवन एवं संदेश का अध्ययन कर हम भी उन व्यावहारिक गुणों को अपने जीवन में आचरित कर सकते हैं। माँ की वाणी सीधे हृदय को स्पर्श करती है। माँ अपनी स्नेह-दृष्टि से अशान्त मानव के हृदय में शान्ति-वारि का सिंचन करती हैं। श्रीमाँ के पास भय की प्रताड़ना नहीं है, बल्कि सदा सबके लिए प्रेमभरा आश्वासन है। वे कहती हैं, तुम्हारा भार मैं लूँगी। माँ सर्वदा हमारी आश्रय हैं।

श्रीरामकृष्ण देव आचारनिष्ठ थे। माँ उन आचारों की मर्यादा का निर्वाह करती थीं। संतान कुपुत्र हो सकता है, पर माता कभी कुमाता नहीं हो सकती है। माँ सबको ग्रहण कर आश्रय देती थीं। श्रीमाँ और ठाकुर में एक विचित्र बात हम देखते हैं, जहाँ ठाकुर श्रीरामकृष्णदेव ने पहली बार भवतारिणी का अन्न प्रसाद ग्रहण करने से इन्कार किया था। एक बार उन्होंने किसी महिला के हाथों भोजन भेजने पर श्रीमाँ पर रुष्ट-स्वर में कहा था। अब ऐसी महिलाओं के हाथ से भोजन कभी मत भेजना। तब श्रीमाँ ने अपनी मातृत्व शक्ति का परिचय देते हुए कहा था – यदि कोई माँ कहकर पुकारेगा, तो मैं उसे 'ना' नहीं कह सकूँगी। श्रीमाँ सारदा अमजद जो एक मुसलमान था, उसका जूठन अपने हाथों से साफ करती थीं। गोपाल की माँ, पगली मामी, राधू, नलिनी आदि सबको समान स्नेह करती थीं। अपनी संतानों की वे अपनी अभय गोद में लेकर उनकी सब प्रकार से रक्षा करती थीं। माँ प्रयोजनानुसार अनुशासन भी करती थीं, पर अभिशाप कभी नहीं देती थीं।

श्रीमाँ के दिव्य स्वरूप का परिचय ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव की इस वाणी में मिलता है। एक बार श्रीमाँ ने ठाकुर से पूछा – "मैं आपकी कौन हूँ? ठाकुर ने तुरन्त कहा – तुम मेरी आनन्दमयी माँ हो। मन्दिर में जो भवतारिणी बैठी है, तुम वही भवतारिणी माँ हो।" ऐसा विचित्र अद्‌भुत सम्बन्ध संसार में कभी किसी ने नहीं देखा है, न सुना है।

एक पति का अपनी धर्मपत्नी के प्रति जो कर्तव्य होता है, उसका निर्वाह ठाकुर ने किया, किन्तु उन्होंने श्रीमाँ को हमेशा साक्षात् आनन्दमयी जगदम्बा के रूप में ही देखा। उन्होंने श्रीमाँ की षोडशी पूजा कर जगत के सामने उन्हें जगन्माता के रूप में सुप्रतिष्ठित किया है। श्रीमाँ की जननी श्यामासुन्दरी के लिये माँ साक्षात् बैकुण्ठवासिनी लक्ष्मी थी। श्रीमाँ के तीसरे भाई काली को यह अनुभव होता था कि माँ उनकी दीदी साक्षात् लक्ष्मी हैं। भानुबुआ को श्रीमाँ का दर्शन चतुर्भुजा देवी के रूप में हुआ था।

श्रीमाँ सारदा के प्रणाम मन्त्र में लिखा है –

यथाऽग्नेर्दाहिका शक्ती रामकृष्णे स्थिता हि या।
सर्वविद्यास्वरूपां तां सारदां प्रणमाम्यहम्।।

यहाँ स्वामी सारदानन्दजी माँ सारदा की स्तुति करते हुए उन्हें परब्रह्मस्वरूप रामकृष्ण की शक्ति कहकर वन्दना करते हैं।

माया की दो शक्तियाँ हैं – १. आवरण शक्ति एवं २. विक्षेप शक्ति। आवरण शक्ति द्वारा माया ब्रह्म के वास्तविक शक्ति को ढककर रखती है। विक्षेप शक्ति द्वारा जगत की रचना करती है। यही माया, ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को जीव को जानने नहीं देती है। जैसे श्रीराम, सीताजी और लक्ष्मणजी हैं। यहाँ श्रीराम ब्रह्मस्वरूप हैं, आगे-आगे चलते हैं। सीताजी माया स्वरूपिणी हैं, उनके पीछे-पीछे चलती हैं। लक्ष्मण जीवस्वरूप हैं, जो सीताजी अर्थात् माया के पीछे-पीछे चलते हैं और श्रीरामजी को नहीं देख पाते हैं। जब सीताजी कृपाकर थोड़ी हटती हैं, तब उन्हें श्रीराम का दर्शन होता है।

हमारी श्रीमाँ सारदा सदा परब्रह्मस्वरूपिणी हैं। ये परब्रह्म श्रीरामकृष्ण के दर्शनार्थ परम मुक्ति का मन्त्र जाति-धर्म निरपेक्ष होकर प्रदान करती हैं। श्रीमाँ सारदा ने शान्तिमन्त्र बताते हुए कहा था – "यदि जीवन में शान्ति चाहते हो, तो किसी का दोष मत देखना। सभी तुम्हारे अपने हैं, कोई पराया नहीं है।" ○○○

कोई भी जीवन असफल नहीं हो सकता; संसार में असफल कहीं जानीवाली कोई वस्तु है ही नहीं। सैकड़ों बार मनुष्य को चोट पहुँच सकती है, हजारों बार वह पछाड़ खा सकता है, पर अन्त में वह यही अनुभव करेगा कि वह स्वयं ही ईश्वर है। – *स्वामी विवेकानन्द*

धैर्य : साधक-जीवन का परम गुण

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

आध्यात्मिक जीवन में साधक-साधिकाओं के लिये ये दो गुण अत्यन्त आवश्यक हैं – पहला धैर्य और दूसरा अध्यवसाय। हम सभी के जीवन में धैर्य की कमी रहती है। यदि हमें ऐसा लगता है कि जीवन में हमें सब कुछ तुरन्त मिल जाये, तो यह हड़बड़ी ठीक नहीं है। हम लोगों के जीवन में सबसे बड़ा धोखा यह है कि हम धैर्य बिलकुल नहीं रखते। आध्यात्मिक जीवन में सब कुछ ठीक करते हुए भी धैर्य की आवश्यकता होती है। कुछ अच्छी वस्तु की प्राप्ति के लिये धीरज रखना आवश्यक है। हमलोगों को जीवन के छोटे-छोटे कार्यों में धैर्य का अभ्यास करना चाहिए। धैर्य ईश्वरीय गुण है। इसे हमें अपने जीवन के आचरण से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

यदि कोई वस्तु हमें बाँटना है, तो हम पहले दूसरों को दें, बाद में अपने लें। यह न सोचें कि बाद में हमें नहीं मिलेगा, तो पहले अपना भाग ले लें। यदि हम स्वार्थ में अधीर होंगे, तो जीवन में सब बातों में अधीरता आयेगी। इसके लिए धैर्य रखने का प्रयत्न करना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में चुपचाप धैर्यपूर्वक साधना करते रहना चाहिए। हमें भगवान का नाम-जप भी शान्तिपूर्वक बिना चंचलता से करना चाहिए। यदि विवश होकर भी धैर्य रखना पड़े, तो उसका परिणाम अच्छा ही होता है, उसका उपयोग भी अच्छा होता है। हम नियमित जप तो करते हैं, लेकिन उसका फल हमें नहीं मिलता है। उसका कारण यह है कि हम दूसरी चीजों पर अधिक ध्यान देते हैं। हमारा मन बिखरा हुआ रहता है। हम ह्रदय से भगवान का नाम नहीं लेते, इसलिए हमें उसका फल नहीं मिलता। धैर्य और अध्यवसाय एक सिक्के के दो पहलू हैं। ये दोनों साधक के लिये बहुत आवश्यक हैं।

हम रेलगाड़ी से यात्रा करते हैं। कभी-कभी रेलगाड़ी ३ घंटे लेट रहती है। जब हम उसे बिना उद्विग्न हुए स्वीकार करते हैं, तब हमारे भीतर धैर्य का विकास होता है। उस समय हमें धैर्य रखकर ३ घंटे भगवान का नाम-जप, सद्ग्रंथ पढ़ना चाहिए, भगवान का भजन करते रहना चाहिए। हमें अपने शरीर और मन को पवित्र और साधना की तीव्र आकांक्षा रखनी चाहिए। हमें अविचलित होकर रहने का अभ्यास और मन को भगवान के चिन्तन में लगाये रखना चाहिए। तब जीवन में धैर्य आता है।

हम अपनी दिनचर्या में भगवान को जोड़ लें। अभी हमलोग सत्संग के द्वारा भगवान की ओर मन लगाने के लिये तैयारी कर रहे हैं, यह हमारी साधना ही है। इसके साथ-साथ भगवान को पाने के लिए तीव्र व्याकुलता चाहिए। व्याकुलता तब आती है, जब संसार की वस्तुओं में हमें असारता, व्यर्थता का बोध होने लगे। सांसारिक कर्तव्य और परमार्थ, हमें दोनों को साथ-साथ करना पड़ेगा। शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए अच्छी बातों की आदत डालनी चाहिए। संसार में जो बाधायें आती हैं, उससे विचलित न होकर धीरज रखें और उसे सहने के लिए प्रयत्नशील रहें।

हमारे जीवन में बरसात के बादल जैसी कठिनाईयाँ आयेंगी, उसे धैर्य से सहना है। हमें भगवान से सहन करने की शक्ति माँगनी चाहिए। श्रीमाँ सारदा कहती थीं – बेटा, सहो, जो सहे, सो रहे। श्रीरामकृष्ण कहते थे – श,ष,स – अर्थात् सहन करो, सहन करो, सहन करो।

श्रीरामचरितमानस के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है –

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।

आपद काल परिखिअहिं चारी।।

अर्थात् आपत्ति के समय, संकट-काल में धैर्य, धर्म, मित्र और नारी की परीक्षा होती है।

अत: बुरे दिनों में कभी भी धैर्य न खोएँ और भगवान के शरणागत होकर उनसे सदा प्रार्थना करते रहें। ○○○

ध्यान ही महत्त्वपूर्ण बात है। ध्यान लगाओ। ध्यान सब से बड़ी बात है। आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति के लिए ध्यान श्रेष्ठतम-निकटतम उपाय है। हमारे दैनिक जीवन में यही एक क्षण है, जब हम सांसारिकता से पृथक् रह पाते हैं; इसी क्षण में आत्मा अपने आप में ही लीन रहती है, अन्य सब विचारों से मुक्त रहती है – यही है आत्मा का आश्चर्यजनक प्रभाव। – *स्वामी विवेकानन्द*

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३७)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

निश्चित रूप से जान लो – उन्होंने तुम लोगों को कभी भुलाया नहीं, कितने ही लोगों को उन्होंने मुक्ति का आश्वासन दिया है, परित्राण का आश्वासन दिया है। उन सभी को उन्होंने याद रखा है। वे मुक्तिदाता हैं, परित्राता हैं, इसीलिये महासमाधि में लीन होकर भी वे अपने वचन को भूले नहीं। उनके चले जाने के बाद मुझे इसके कितने ही संकेत मिले हैं।

तथापि मेरी कामना है कि सभी लोग उन्हें भूल जाएँ, ताकि वे अपने सत्–चित्–आनन्द स्वरूप में विलीन रह सकें; और वहाँ इस जीवन-यंत्रणा की स्मृति तक उनका स्पर्श न कर सके।

किसी मूलभूत रूप में उनकी सेवा करने की मुझे कितनी इच्छा होती है! उसका परिणाम क्या होगा, इसकी मुझे जरा भी चिन्ता नहीं है। इस कार्य हेतु यदि मुझे किसी भयंकर बन्धन में जकड़ना पड़े, तो भी मुझे खुशी ही होगी। इस कार्य के लिये जिस शक्ति, निष्ठा तथा ज्ञान की आवश्यकता है, प्रार्थना करो कि वह मुझे प्राप्त हो; मेरे लिये अन्य कुछ भी माँगने की जरूरत नहीं है। मैं अन्य कुछ भी नहीं चाहती। प्रिय नेल, उनकी मृत्यु नहीं हुई है। वे सर्वदा हमारे साथ हैं। मैं तो शोक भी नहीं मना सकती। मैं केवल कार्य करना चाहती हूँ।

४ सितम्बर, १९०२ : मैक्लाउड को

हर गुजरता हुआ दिन मुझे अधिकाधिक स्पष्ट रूप से दिखा रहा है कि अपने पिता का निजी कार्यभार, सचमुच ही, मैंने अपने कन्धों पर उठा लिया है।

१४ सितम्बर, १९०२ : मैक्लाउड को

अन्तिम बुधवार के प्रात:काल जब हम लोग पीछे के बरामदे में बैठे थे, उस समय जिस अन्तिम विषय पर उन्होंने चर्चा की थी, वह पूरी तौर से तुम्हीं लोगों के बारे में था – कोई भी व्यक्ति लेगेट[१] के समान प्रेम नहीं कर सका था, उनकी व्यावसायिक ईमानदारी, चारित्रिक पवित्रता; और लेडी बेट्टी (श्रीमती लेगेट) के विषय में उनका खेद, उनकी निर्भावुकता, अपने पसन्द के विषय का सटीक रूप से चयन करने में उनकी विशेष बुद्धिमत्ता। और तुम्हारे विषय में – कैसे तुम 'शिशुवत् परम विश्वास के साथ (इसके बाद उन्होंने धीरे-धीरे कहा) भयंकर शंकालुता की एक विचित्र मिश्रण हो!' वस्तुत: उनका मन तुम्हीं लोगों को लेकर व्यस्त था – अतीत की उन स्मृतियों में डूबा हुआ, जो उनके लिये चिर वर्तमान थीं; और उनके किसी सामान्य विचार के द्वारा स्पृष्ट होना भी व्यक्ति के लिये यथेष्ट आशीर्वाद होता।

उन्होंने हमें पशुओं की कहानियाँ सुनाईं और 'गजट' शब्द का मजेदार पुराने ढंग से उच्चारण किया, जिससे मेरा मन एक लम्बी साँस के साथ हेल-बहनों की ओर उन्मुख हुआ; इस प्रकार उन लोगों का भी उन्होंने स्मरण किया था।

शुक्रवार को ही उन्होंने प्रचलित मधुर शैली में, कलकत्ते के अपने पुराने मित्रों के साथ बातें की थीं, जिनमें स्वामी रामकृष्णानन्द के पिता एक थे। उसी दिन अपराह्न में उन्होंने ब्रह्मचारियों से कहा, ''यदि कभी कोई व्यक्ति मेरी नकल करे, तो उसे लात मारकर दूर कर देना। मेरी नकल मत करना।'' वे उस हावड़ा रोड तक घूम आये जिस पर तुम प्राय: ही जाया करती थी।

परन्तु तुम्हारे लिये वास्तविक सन्देश तो स्वयं

१. मिस मैक्लाउड के बहनोई श्री फ्रांसिस लेगेट स्वामीजी के परम अनुरागी और अमेरिका में उनके प्रचार-कार्य के विषेश सहयोगी थे।

चिताग्नि से आया था। जैसा कि मैंने तुम्हें उस पत्र में लिखा है, जो कदाचित् खो चुका है – अपराह्न के दो बजे, जब हम सभी वहाँ खड़े थे, मैंने – बिस्तर पर लगे हुए एक विशेष वस्त्र के विषय में स्वामी सारदानन्द से पूछा, ''क्या इसे भी जला दिया जाएगा? इसी को पहने हुए मैंने आचार्यदेव को अन्तिम बार देखा था।'' स्वामी सारदानन्द ने तत्काल वह वस्त्र मुझे देना चाहा, परन्तु मैं ले नहीं सकी। मैंने यही कहा, ''यदि मैं युम के लिये इसकी किनारी का एक कोना-मात्र काट पाती!'' परन्तु मेरे पास न छुरी थी और न कैंची; फिर देखने में भी यह कार्य कौन जाने, अच्छा लगता या नहीं – अत: मैंने कुछ नहीं किया।

छह बजे थे या फिर पाँच का समय था? मेरे पिछले पत्र में ठीक समय लिखा है। मुझे लगता है कि छह बजे थे। ऐसा लगा मानो किसी ने मेरे आस्तीन को पकड़कर खींचा। मैंने दृष्टि को झुकाकर देखा – अग्नि तथा अंगारों से काफी दूर ठीक वही दो-तीन इंच का टुकड़ा, जिसे मैंने वस्त्र के छोर लेना चाहा था, सुरक्षित रूप से उड़कर मेरे निकट पड़ा था। मैंने उसे महासमाधि के उस पार से तुम्हारे लिये भेजा गया उनका पत्र समझा। इसीलिये मेरा विश्वास है कि वे इसे डाक की गड़बड़ी में नहीं खो जाने देंगे।

जब मैंने गिरीश बाबू को बताया, तो वे धीरे से बोले, ''मैंने इस तरह की बहुत-सी घटनाएँ सुनी हैं!'' उनकी दृष्टि में यह चीज बड़ी स्वाभाविक थी, क्योंकि स्वामीजी – हमारे स्वामीजी मरे नहीं हैं। प्रिय युम! क्या तुम देख नहीं रही हो? अब वे केवल 'स्वयं' हैं और पहले से भी अधिक जीवन्त हैं। इतना ही नहीं, बात इससे भी कुछ अधिक है। मैं जानती हूँ कि उन्होंने –किसी विशिष्ट पद्धति से कुछ काल और हम लोगों के बीच रहने का संकल्प किया है। इसका क्या उद्देश्य है? क्या ऐसा कुछ है, जिससे वे हमारी रक्षा करना चाहते हैं? या फिर वे हमें तीव्र वेग से चलाकर विजयश्री देना चाहते हैं? प्रिय युम, तुम्हें यह पूछने की जरूरत नहीं है कि उन्होंने इस या उस विषय पर क्या कहा था! मूल बात यह है कि इस समय वे क्या कह रहे हैं! क्या उनका प्राकट्य समाप्त हो गया है!

२१ दिसम्बर, १९०२ : मैक्लाउड को

वह १३ दिसम्बर, शनिवार की संध्या का समय था, परन्तु सदानन्द ने सुझाया कि हमें खण्डगिरि में जाकर 'क्रिसमस इव' मनाना चाहिये। हमारे दाहिनी ओर ऊपर की ओर चढ़ाववाली पहाड़ियों पर मर्मर-ध्वनि करते हुए वृक्ष तथा यत्र-तत्र निर्जन गुफाएँ विद्यमान थीं और हम लोग प्रज्वलित धूनी की आग के चारों ओर, नीचे घास पर बैठे थे। सदानन्द और भानजे (ब्रह्मचारी अमूल्य) ने हाथ में लम्बी लाठी और सिर पर पगड़ी के समान कम्बल को लपेटकर चरवाहों का वेश धारण किया था। हमलोगों ने (बाइबिल से) 'प्राच्य देश से आये ज्ञानियों' और रात के समय मैदान में रहनेवाले 'चरवाहों के समक्ष देवदूतों के आगमन' की बातें पढ़ी।

हम लोग पन्ने-पर-पन्ने और अध्याय-पर-अध्याय पढ़ते गये। 'सेंट ल्यूक के सुसमाचार' का अन्तिम अध्याय जिसमें ईश्वरपुत्र ईसा की, अपने परित्यक्त शिष्यों के पास लौटने की आकुलता व्यक्त हुई है, उसकी सटीकता तथा सरलता की हमें बड़े ही अद्भुत रूप से अनुभूति हुई।

(ईसा का) 'पुनरुत्थान' अब हमारे लिये कोई सुनिश्चित स्थूल चमत्कार मात्र नहीं रह गया है; बल्कि वह एक ऐसी वास्तविक सत्ता है, जिसकी प्रत्यक्ष अनुभूति महान् आध्यात्मिक व्यक्तियों को प्राय: ही हुआ करती है और एक बार यह अनुभूति आरम्भ हो जाने पर, यह पक्के संशयवादी के मन को भी पूरी तौर से अभिभूत कर लेती है। (ईसा के) पुनरुत्थित होने के बाद के चालीस दिनों का जीवन क्रूसविद्ध होने के पूर्व के तीन वर्षों की अपेक्षा कई गुना अधिक घनिष्ठतर, मधुरतर, पवित्रतर होने के बावजूद कहीं अधिक अबोधगम्य तथा इन्द्रियातीत रहा।

मुझे स्मरण है कि श्रीरामकृष्ण के देहत्याग वाले सप्ताह के दौरान ही स्वामीजी ने 'एक ज्योतिर्मय आत्मा' का दर्शन किया था। क्या मैं नहीं जानती कि स्वामीजी की प्रज्वलित चिता के पास ही, मेरा अपना ही आस्तीन खींचकर मेरे द्वारा एक सन्देश भेजा गया था। जब मठ के साथ मेरा सम्पर्क पूर्णत: छिन्न हो गया था, उन प्रारम्भिक दिनों के दौरान क्या ये सब मेरे लिये स्मरणीय क्षण नहीं थे? क्या मैं इस 'पुनरुत्थान' की सत्यता नहीं जानती? क्या मैं स्वयं उस काल के लेखक की कठिनाई का अनुभव नहीं करती – एक ऐसे लेखक की कठिनाई का, जिन्हें यहाँ-वहाँ उभर रहे संकेतों को भाषा के द्वारा व्यक्त करने की चेष्टा करनी पड़ रही है, परन्तु वे देखते हैं कि उनकी अपनी लेखनी के द्वारा ही वे संकेत स्थूल रूपों में परिणत होते जा रहे हैं? **(क्रमशः)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४९)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज! भागवत में कहा गया है – **कृष्णास्तु भगवान स्वयं** – कृष्ण तो स्वयं भगवान हैं। उसके बाद हैं – पूर्णावतार, अंशावतार और कलावतार। अवतार भी छोटे-बड़े होते हैं क्या?

महाराज – यही तो। सभी माताओं के पास उसके बच्चे सर्वाधिक सुन्दर होते हैं। अवतार छोटे-बड़े कैसे होंगे? एक भगवान ही आ रहे हैं। लेकिन मैं कहता हूँ – जिस समय में या युग की आवश्यकतानुसार जितनी शक्ति की आवश्यकता थी, उतनी ही शक्ति उन्होंने उस युग में प्रकाशित किया था। अर्थात् जो हमलोग छोटा-बड़ा कह रहे हैं, वह केवल शक्ति-प्रकाश के भेद के अनुसार है। स्वामीजी ने तो ठाकुर को 'अवतारवरिष्ठ' कहा है। अवतारों में सर्वश्रेष्ठ क्या है?

– महाराज! तो क्या हमलोग यह मान लें कि इस बार शक्ति का प्रकाश सबसे अधिक हुआ था?

महाराज – वह तो इतिहास का विश्लेषण कर देखो। स्वामीजी ने तो यह भी कहा है इस बार का पतन पहले के सभी पतनों का अतिक्रमण कर गया है। इस बार के पतन की तुलना में पहले के सभी पतन गोस्पद – गाय के खुर के समान हैं।

– महाराज! अवतार तो किसी प्रारब्ध-कर्मवशात् शरीर धारण नहीं करते हैं। तो कैसे शरीर-धारण करते है?

महाराज – गीता में भगवान कहते हैं – 'सम्भवामि आत्ममायया' अर्थात् अपनी माया से शरीर-धारण करता हूँ। क्यों करते हैं? 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' अर्थात् लोक-कल्याण के लिये। जगत-कल्याण रूपी व्रत ही उनके शरीर-धारण का कारण है।

प्रश्न – श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में है – ठाकुर को एक दिन ज्ञात हुआ कि उनकी मुक्ति नहीं होगी। थोड़ा इस विषय को समझा देंगे क्या?

महाराज – इस जगत-कल्याण रूपी व्रत से उनकी मुक्ति नहीं होगी। जगत-कल्याण हेतु जब भी आवश्यकता होगी, उन्हें बार-बार आना होगा। इस बारम्बार आने से मुक्ति नहीं है।

– हाँ महाराज, श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में उदाहरण के रूप में कहा गया है कि जमींदारी में जहाँ समस्या होती है, वहीं गोलोक चौधरी को भेजा जाता है।

महाराज – हाँ, वहाँ गोलोक चौधरी के भेजने का उल्लेख है, किन्तु यहाँ उन्हें कोई भेजता नहीं है, वे स्वयं ही आते हैं।

प्रश्न – प्रतिदिन ही तो थोड़ी-थोड़ी तत्त्व की बातें हो रही हैं, आज थोड़ी साधना की बातें करना अच्छा होता। ठाकुर ने कहा है – कामिनी कांचन त्याग। इस त्याग की बात थोड़ी कहिए।

महाराज – एक व्यक्ति ठाकुर को कह रहा है – महाशय! भवनाथ ने पान और मछली का त्याग किया है। ठाकुर सुनकर कह रहे हैं – पान और मछली त्याग करना क्या कोई त्याग है! कामिनी कांचन ही त्याग है। मान लो, कोई कैश में कार्य करता है, कोई चन्दा देने आने पर क्या नहीं लेगा? क्योंकि उसने कामिनी-कांचन का त्याग किया है ! मान लो, कोई डॉक्टरी करता है, क्या महिला रोगी आने पर नहीं देखेगा? या कोई महिला गरीब है, तो उसकी सहायता नहीं करेगा? यहाँ शाब्दिक अर्थ लेने से नहीं होगा, भाव ग्रहण करना होगा।

– महाराज, ठाकुर ने तो संन्यासी के लिए अन्तर्बाह्य दोनों के त्याग की बात कही है।

महाराज – यहीं तो संकट में डाल दिया।

– ठाकुर कह रहे हैं – संन्यासी कामिनी के मुख की ओर भी नहीं देखेगा। हमलोगों के व्यावहारिक यथार्थ जीवन में क्या यह सम्भव है?

महाराज – **वास्तव सम्मत** कर लेना। जितना पालन करना सम्भव होगा, उतना करना। सच्ची बात है – कामिनी और कांचन त्याग करना ही होगा।

– महाराज, ठाकुर ने कहा है, कितना भी बुद्धिमान सावधान कोई क्यों न हो, काजल की कोठरी में रहने से

थोड़ी कालिख लगेगी ही।

महाराज – क्या तुमलोग काजल की कोठरी में हो?

– यही रुपया-पैसा का लेन-देन करते हैं।

महाराज – वह सब बिलकुल ही काजल नहीं है। आसक्ति होने पर वह सब काजल है। आसक्ति नहीं रहने पर त्याग करने के लिए कुछ नहीं रहता है। आसक्ति है, किन्तु विषय से दूर है, यह त्याग नहीं हुआ। और आसक्ति नहीं रहने पर विषयों में रहने पर भी कोई क्षति नहीं होती। भीतर जो भोग-वासना है, उसे दूर करना होगा। केवल विषय से दूर रहने से क्या होगा? – **रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते**। (गीता-२-५९) बौद्धशास्त्र में है – **भिक्षुः हिरण्यं रसेन न स्पृहयति**। हमलोगों ने ऐसा साधु देखा है, वह रुपया-पैसा एक पोटली में बाँधकर रखता था। रिक्शा भाड़ा देते समय रिक्शावाला को कहता – पोटली खोलकर पैसा लेकर फिर से पोटली बाँध दो। ये सब त्याग का विकृतिकरण है। (सभी हँसते हैं) शरीर रक्षा हेतु जितनी आवश्यकता है, उतना लेना होगा। मान लो, भोजन करना है, नहीं तो मर जाएँगे। वस्त्र नही पहनने से पुलिस पकड़ेगी। (सभी हँसते हैं) परिव्राजक होकर बाहर-बाहर परिभ्रमण से रोग होगा, डाक्टर लगेगा, हमलोगों का खर्च और बढ़ जायेगा। (सभी हँसते हैं) शरीर के लिये जितना प्रयोजन है, उतना लेना होगा। जितना कम लिया जाय, उतना ही अच्छा है। मैं कहता हूँ प्रयोजन के अतिरिक्त ग्रहण नहीं करना ही अपरिग्रह है। इस सम्बन्ध में सबके लिए कोई निश्चित नियम नहीं होता है। एक की आवश्यकता हो सकता कि दूसरे के लिए विलासिता हो। इसके विपरीत एक के लिए जो विलासिता है, वह दूसरे के लिए आवश्यकता हो सकती है। बहुत विचार करना। अत्यन्त आत्मविश्लेषण करना। दूसरी बात है – त्याग का अहंकार भी त्याग करना होगा। 'मैंने त्याग किया है', यह अभिमान भी नहीं रहेगा। – **येन त्यजसि तत् त्यज** – जिसके द्वारा त्याग किया है, अर्थात् अहंकार, उसका भी त्याग करना होगा। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३१ का शेष भाग

की कीर्ति बढ़ायेंगे, तो वे भी आपकी कीर्ति अवश्य ही बढ़ायेंगे। दूसरों के महत्त्व को स्वीकारें तथा उनकी भावनाओं का आदर करें। दूसरों द्वारा किये छोटे-से-छोटे काम की भी प्रशंसा करें। जिसके जीवन में न संतोष है, न शान्ति वह जीवन भी क्या जीवन है? दूसरा उन्नति कर रहा है, तो उससे प्रेरणा लेकर उन्नति करना चाहिए। दूसरे ने उन्नति कैसे की – इसका विश्लेषण करना चाहिए तथा उससे शिक्षा लेनी चाहिए।

अपनी गलती स्वीकार करें – वही व्यक्ति अत्यधिक लोकप्रिय, प्रशंसनीय होता है, जो अपनी गलती को स्वीकार करता है। यदि आपसे कोई भूल हुई है, तो उसे तुरन्त स्वीकार करें। आप हर सप्ताह अपनी प्रगति का मूल्यांकन करें, स्वयं ही मालूम करें कि आपने कब कौन-सी गलती की और भविष्य में उसे न करने का संकल्प करें।

कुव्यसनों एवं दुष्प्रवृत्तियों को त्यागें – वही व्यक्ति महान होता है, जिसमें कोई कुव्यसन या कुप्रवृत्ति नहीं होती है। कुव्यसनों से शारीरिक दुर्बलता आती है और शारीरिक दुर्बल व्यक्ति सदा रोगी तथा आलसी रहता है।अच्छे व्यक्तित्ववाले व्यक्ति कभी नशीली वस्तुओं जैसे ध्रूमपान, जर्दा, गुटका, मद्यपान, मादक द्रव्य पदार्थ आदि का उपयोग नहीं करते। मद्यपान और ध्रूमपान जैसी नशीली वस्तुओं का उपयोग आजकल फैशन हो गया है, इसमें अपनी श्रेष्ठता, सभ्यता समझना महान मूर्खता है। यह तो अपने पैरों पर स्वयं ही कुल्हाड़ी मारने के समान है। जो व्यक्ति इनसे दूर रहता है, वही सदा स्वस्थ रह सकता है तथा स्वस्थ व्यक्ति ही निरन्तर प्रगति करता है।

जरा सोचिए, जिस व्यक्ति ने नशीली वस्तुओं को अपना रखा हो, दुष्प्रवृत्तियों, जुआ आदि का शिकार हो चुका हो, उसका व्यक्तित्व कैसे निखर सकता है? मादक द्रव्यों को सेवन करने के लिये जो प्रेरित करता है, वह मित्र नहीं, परम शत्रु है। भगवान ने हमें मूल्यवान जीवन और अनमोल शरीर इसलिए नहीं दिया कि हम जानबूझ कर उसे मृत्यु के हवाले कर दें। यदि आप अपना व्यक्तित्व आदर्श, अनुकरणीय एवं महान बनाना चाहते हैं, तो कभी गलत राह नहीं अपनावें। सदा सही मार्ग पर चलकर ही आप महान व्यक्तित्व के अधिकारी हो सकते हैं। ○○○

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में शीत राहत-कार्य प्रारम्भ हुआ

२ नवम्बर, २०१९ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा शीत राहत कार्य प्रारम्भ किया गया। रायपुर से ११० किलो मीटर दूर गरियाबन्द जिले के छुरा ब्लाक के आदिवासी क्षेत्रों में बीरोडार और पण्डरीपानी ग्राम के १४७ आदिवासी परिवारों को उत्कृष्ट कोटि के कम्बल रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के सह-सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज के कर-कमलों से प्रदान किए गए। छुरा स्थित कचना धुरवा शासकीय महाविद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना के कार्यक्रम अधिकारी विनीत साहू, राष्ट्रीय सेवा योजना के स्वयंसेवकों, रविशंकर विश्वविद्यालय के प्रो. बी.एल. सोनेकर, कपिल कुमार चन्द्रा और पंकज साहू ने सर्वे और वितरण आदि कार्यों में सहायता प्रदान किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में १२ से १६ अवतूबर, २०१९ को सेल खेल का आयोजन हुआ, जिसमें छत्तीसगढ़ के विभिन्न स्थानों के १५०० छात्रों ने भाग लिया। **छत्तीसगढ़ की राज्यपाल श्रीमती अनुसुइया ओइके** ने समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में भाग लेकर बच्चों को सम्बोधित किया।

रामकृष्ण मिशन, ढाका (बांगलादेश) में दुर्गापूजा के दौरान बांगलादेश के राष्ट्रपति अब्दुल हमीद, बांगलादेश की प्रधानमन्त्री शेख हसीना, पुलीस निरीक्षक जाबेद पटवारी, पुलीस आयुक्त शाहीदुल इस्लाम, मेयर सैयद खोकन और अन्य गणमान्य लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन के विदेश स्थित विभिन्न आश्रमों ने मूर्ति स्थापित कर दुर्गापूजा का आयोजन किया –

डरबन, साउथ अफ्रिका, लुसाका (जाम्बिया), मारीशस, बंगलादेश में बालीयाटी, बारीसाल, चाँदपुर, चित्तगोंग, कोमीला, ढाका, दिनाजपुर, फरीदपुर, हबीबगंज, जेसौर, मेमनसिंह, नारायणगंज, रंगपुर और सिलेट।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के द्वारा निम्नलिखित स्थानों पर नये केन्द्रों का शुभारम्भ किया गया। उन आश्रमों से सम्पर्क करने का पता निम्नलिखित है –

१. सचिव, रामकृष्ण मठ, भाटा बजार, पूर्णिया – ८५४३०१, (बिहार) दूरभाष – ९९७३३ २५९०७

ई-मेल – purnea@rkmm.org

२. सचिव, रामकृष्ण मिशन, नं. ४, नास्करपारा लेन, कसुन्दिया, हावड़ा - ७११११०१ (पश्चिम बंगाल)

दूरभाष - ०३३-२६४२०९३२

ई-मेल – kasundia@rkmm.org

३. सचिव, रामकृष्ण मिशन, हमीरपुर, राउरकेला, सुन्दरगढ़ – ७६९००३ (उड़िसा)

दूरभाष - ०६६१-२६४३७६४, ८९१०८०३९३७

ई-मेल – rourkela@rkmm.org

रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के द्वारा २८ से ३० अक्तूबर, २०१९ तक विभिन्न स्थानों – अलमोड़ा में चार, नैनीताल और भीमताल में सेमीनार आयोजित किए गए, जिसमें छात्रों, कॉलेज के अध्यापकों सहित कुल २००० लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, जमशेदपुर में २७ सितम्बर, २०१९ को सांस्कृतिक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें ४०० लोग उपस्थित थे।